ओ३म्

भूमिका

वाचकवृन्द ! वेदमतमार्तण्ड को पौराणिक घटा ने ऐसा दबाया है कि संसार में घोर रात्रि प्रतीत होती है । यद्यपि श्री स्वामी शङ्कराचार्य आदि महापुरुषों ने कठिन प्रयत्न से वेदभगवान् भास्कर के अगणितगुण गया सुभा दिये थे, तथापि अधिकतर पौराणिक पोल न खोलने के कारण शङ्कर स्वामी के मत को ग्रास करने में पौराणिक कृतकृत्य होगये । चाहे उन्हों ने शङ्कर को शङ्करावतार भी कहकर विश्व में विशेष प्रतिष्ठा बढ़ा दी है, परन्तु सिद्धान्त हानि अवश्य हुई । क्योंकि—

शाक्तैः पाशुपतैरपि क्षपणकैः

इत्यादि प्रमाणों से प्रमाणित है कि स्वामी शङ्कराचार्य सम्प्रदायों का खण्डन कर चुके हैं । अस्तु— अब से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पौराणिकमत खण्डन कर वेदधर्म को पुनरुज्जीवित किया है तब से पौराणिक भाई अकुला उठे हैं । अब जब तक १८ हों पुराणों का खण्डन न कर दिया जावे तब तक वेदभगवान् की किरणोका प्रकाश व्याप्त न होगा । पुराणोंका खण्डन सबसे पूर्व भागवत से आरम्भ हुवा है क्योंकि इसदेश में भागवतका ही प्रचार अधिक है "विद्यावतां भागवते परीक्षा" यह वाक्यभी प्रसिद्ध है ॥

भागवत का मूल परीक्षित राजा से आरम्भ है । मेरा स्थान भी यहां परीक्षितगढ़ ही है इसलिये मेरा किया खण्डन अच्छा हो जावेगा ॥

छुट्टनलाल स्वामी
स्वामी प्रेस मेरठ

अथ भागवतसमीक्षा ।

(तृतीयस्कन्ध)

तृतीयस्कन्ध की समीक्षा के प्रथम ही हम एक बात और भी विदित ज्ञात कराते हैं कि आज हमने भागवत की भाषाटीका (जो भारतधर्म महामण्डल द्वारा प्रकाशित, महामहोपदेशक, पं० ज्वालाप्रसाद जी की शोधित है) देखी; जिस के आरम्भ में ही लिखा है कि:—

पहिले ब्रह्मा भगवान् का सम्वाद संक्षेप से कह्यो है फेर शेष जी की कही भागवत सुन्दर विस्तार से कहें हैं ॥ दो प्रकार से भागवत सम्प्रदाय की प्रवृत्ति है, एक तो संक्षेप से श्रीनारायण ब्रह्मा के द्वारा और विस्तार से शेष, सनत्कुमार, सांख्यायन आदि द्वारा भई, तहां द्वितीयस्कन्ध में श्रीना-रायण ब्रह्मा के सम्वाद से संक्षेप से "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि करके चतुः श्लोकी भागवत कही । सोही ब्रह्मा नारद के संवाद में दश लक्षण से कुछ विस्तार से कही, सोही शेष जी की कही, अब अतिविस्तार से कहिवेको तृतीयस्कन्ध आदि को आरम्भ है; तहां तृतीय में पहले विदुर मैत्रेय को सङ्गम कह्यो । इत्यादि ॥

१—भागवत ब्रह्मा और नारायण, २—ब्रह्मा और नारद, ३—शेष जी की । इन में शुक परीक्षित संवाद की १ भी नहीं । न व्यास जी की भागवत का नाम निशान है ॥

इस तृतीयस्कन्ध में एक अद्भुत बात है कि द्वितीय के अन्त में तो शौनक ने सूत से अप्रासंगिक प्रश्न किया कि विदुर का तीर्थयात्रा करते २ मैत्रेय से क्या संवाद हुआ ? सूत जी ने कहा कि परीक्षित के बूझने पर जो शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को उत्तर दिया वही उत्तर हम तुम को सुनाते हैं ॥

अब तृतीयस्कन्ध में "शुक उवाच" प्रथम ही है । शुकदेव कहते हैं कि—

> एवमेव पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल ।
> क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥

अर्थात हेराजन् । इसी प्रकार घर त्याग, वन जाय, विदुर ने मैत्रेय से पूछा था ॥

समीक्षा—अभी राजा का कोई प्रश्न ही नहीं, फिर इसी प्रकार पूछा था, बात कैसी असङ्गत हैं । आगे—राजोवाच—

> कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः ।

कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ! ॥ ३ ॥

अर्थात् विदुर मैत्रेय का संवाद कब कहां हुवा है ? यह हम से वर्णन कीजिये। यह प्रश्न पीछे, उत्तर पहले, कैसे बन सकता है ॥

तृ० स्कं० अ १ के ४४ वें श्लोक में अद्भुत कथा है ॥

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्त्तुर्ग्रहणाय पुंसाम्।
नन्वान्यथा कोऽर्हति देहयोगं परोगुणानामुत कर्मतन्त्रम्॥४४

अर्थ- अजन्मा का जन्म पापी पुरुषों के नाशार्थ और अकर्मा जगदीश के कर्म साधु पुरुषों के ग्रहण करने के लिये होते हैं ॥ क्योंकि जब कर्मरहित जीव ही मोक्ष पाकर जन्म मरण से रहित हो जाता है तब निर्गुण स्वरूप परमेश्वर शरीर बन्धन में आना असम्भव है ॥

समीक्षा-यहां अजन्मा नाम ही नहीं हो सकेगा, यदि जन्म लेगा, और उस को अकर्त्ता कभी नहीं कह सकते जो मानुष कर्म करेगा तथा कृष्णचरित्रों (जो दशम में लिखे हैं) को तो भागवती लोग सभ्य सभा में सत्पुरुषों के ग्रहणीय नहीं बतावेंगे क्योंकि नृत्य करना और एकपुरुषकी१६००० रानी होना कौन स्वीकार करेगा तथा यह बात भी बहुत ही स्पष्ट है कि जब निमित्त से बद्ध जीव की मुक्ति से पुनरावृत्ति पौराणिक नहीं मानते, फिर स्वभाव से मुक्त जगदीश का जन्म कब सम्भव है। आगे अ० २ में श्री कृष्ण के मृत्यु समाचार को रोकर उद्धव कहते हैं कि-

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥ ८ ॥

उद्धव जी विदुर से कहते हैं कि यह लोक (दुनिया) भाग्यहीन है और यादव (श्रीकृष्ण के कुल वाले) बिलकुल ही भाग्यहीन हैं क्योंकि जो पास बसते हुवे भी श्रीकृष्ण को नहीं जान सके कि यह ब्रह्म है, जैसे चन्द्रमा को मछली नहीं जानती ॥

इस पर श्रीधरी टीका कहती है कि:-

ननु श्रीमद्भाह दुर्भगो भाग्यहीनः। ये सह वसन्तोपि श्रीहरिमविदित्वा विदुः यथा क्षीरसमुद्रे जातमुडुपं तद्वा सहत्या मीनाः केवलं कमनीयः कश्चिज्जलचर इत्येवं विदुः नरश्रेष्ठ तमयं इति, तद्वत् । यद्वा जले प्रतिबिम्बितं चन्द्रं यथेति ॥

अर्थात् उद्धवजी सोचते हुवे कहते हैं कि जैसे जल के ही वासी मीन (मछली) क्षीरसमुद्र में जन्म पाये चन्द्रमा को यही जानते रहे कि यह कोई सुन्दर जलजीव है, अमृतमय न जाना इसी प्रकार लोक और यदुवों ने श्रीकृष्ण को साथ क्रीडादि करते हुवे भी ब्रह्म न जाना ॥

इस से तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के जीवन समय में इनको कोई अवतार नहीं मानता था । श्लोक १८ में रासलीला और गोपियों की भक्ति दर्शाई है । और आगे—

दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥

उद्धवजी कहते हैं कि हे विदुर ! आप लोगों ने राजसूय में देखा कि शिशुपाल ने श्रीकृष्ण महाराज को कितने अपशब्द कहे परन्तु द्वेष से भी जो गति शिशुपाल ने पाई उस गति के लिये योगी जन योग मार्ग से भी तरसते हैं । उस कृष्ण के विरह को कौन सह सकेगा ॥

समीक्षा—हम नहीं जानते कि जहां यह बताया जाता है कि अत्युग्र पापियों के यथार्थ अवतार होते हैं, वहां यह कैसे सम्भव है कि उन पापियों को मोक्ष प्राप्त होता है । अतिपाप का प्रायश्चित्त भगवान् के हाथ से मरने मात्र से होना कौन सी फ़िलासफ़ी है । आगे २०वें श्लोक में केवल कृष्ण के ही नहीं अर्जुन के मारे लोगों की भी मुक्ति बताई है । श्लोक २३ में पूतना, जो स्तन में ज़हर लगाये दूध पिलाने आई, उस को माता यशोदा के समान गति दी । खेह कपूर कपास सब एक ही भाव हुवा ।

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता ।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥

कंस के भय से पिताने नन्द के व्रज में पहुंचाये ११ वर्ष वहां ही गुप्त हो रहे ॥

समीक्षा—जब कि इसी अध्याय में पूतना का, कालिय का और बकासुर का वध, गोवर्द्धन उठाना और अनेक चरित्रों का वर्णन है, तब बाललीला में गुप्त बताना ग्रन्थकर्त्ता की ? बाललीला ही नहीं तो क्या है ॥

सुरक्तशिक्षरैर्मुहुर्नानयन् रजनीमुखम् ।
गायत्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥

शरद् के चन्द्रमा को राज्ञिमुख ही जान स्त्रियों के मण्डल के शोभित करने वाले कलपद गाते रमण करते थे ॥ ३४ ॥

भला यह कोई प्रशंसित बात है क्या ?

अध्याय ३ में—

सांदीपने सकृत् प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ।
तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥ २ ॥

उद्धव जी कहते हैं कि सांदीपन ऋषि से एक बार ही सुनकर समस्त वेद पढ़ा और उसका मरा हुआ पुत्र पञ्चजन के पेट से ला दिया । यहां पुरानी किरानियों से बढ़ गये, मुर्दों को जिलाना ही नहीं है, बल्कि पेट में से ले आये जहां आहार का रस रक्त बनता है । श्लोक ३ में रुक्मिणी-हरण की भी प्रशंसा की है । यहां गांधर्वविवाह बताया है परन्तु वह राक्षस विवाह हुवा है, क्योंकि मार छीन करे तो गांधर्वविवाह नहीं कहाता इसलिये आगे नाग्निजिती से स्वयंवर और सत्यभामा से विवाह लिखा है । और आगे ६ । ७ में भौमासुर के रणवास में से अनेक राजकन्याओं से श्रीकृष्ण का विवाह वर्णित है ॥

आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ।
सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥
तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ।
एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥

अर्थात् सब का एक मुहूर्तमात्र में सामीप्य से पाणिग्रहण किया । एक २ में दश २ पुत्र आप जैसे उत्पन्न किये । भला एक कृष्ण यदि अवतार थे तो सब स्त्रियों में १० । १० निजतुल्यपुत्र होने पर शतशः कृष्ण भूमण्डल में हो जाने चाहिये थे, फिर कृष्णभक्ति कैसी ? श्लोक १५ में कहा है कि मीठी मद्य (शराब) के मद से लाल लोचन हो विवाद कर परस्पर लड़ कर यादव मरेंगे । अ० ४ में फिर कहा है—

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ।
तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥

अर्थात् यादव आज्ञा से शराब पीकर बेहोश हो गये, लड़ मरे ॥

समीक्षा—भला श्रीकृष्ण से महात्मा मद्य पीने का ज्ञान होते भी कुल रक्षार्थ उस के निवारण का उद्योग न कर सकें, यह कब सम्भव है? फिर यहां तो कृष्ण की आज्ञा से मद्य पीना कहा है। उस समय में तो यादवों का सौत्रामणी यज्ञ भी न था। फिर भी मद्यपान का निषेध नहीं किया गया। इस से स्पष्ट है कि इस कथा के कर्त्ता मद्यपान को पाप नहीं समझते थे। इस पर भी पीछे अ० ३ श्लोक० १९ में—

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः।
कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः॥१९॥

इसमें श्रीकृष्ण को लोक वेद पथगामी बताया है, फिर भी मद्यपान का उपदेश निज कुल को क्यों किया? और भौमासुर की कन्या का स्त्री भाव से रखना व सब से भोगविलास करना भी यहीं वर्णित है, यह वेद मार्ग कहां गया?। अ० ५ में स्पष्ट कहा है कि विदुर जी 'व्यासवीर्य' से हुवे हैं॥

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे॥

अर्थात मैत्रेय जी विदुर से कहते हैं कि आप व्यासवीर्य से (भुजिष्या दासी में) उत्पन्न हुवे हो। आगे ब्रह्मा, विष्णु, शिव को वैकारिक तत्वात्मक लिखा है॥ श्लो० २३ से सृष्टि की उत्पत्ति लिखी है॥ यथा—

भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः।
आत्मेच्छानुगतो वात्मा नानामत्युपलक्षणः॥२३॥
स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट्।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक्॥२४॥

तथा च—

कामवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान्॥२६॥

इस पर टीका यह कहती है कि ता समय ये सर्वद्रष्टा ईश्वर सम्पूर्ण शक्ति से प्रकाशित होने पर भी इस वैभव को कोई देखने हारा न होने से और मायादिक शक्ति लीन होने से अपने को असत सा मानते भये कि हम हैं तो सही पर कुछ नहीं हैं॥२४॥ हे महाभाग। तब सर्वद्रष्टा या ईश्वर की

कार्यकारण रूपिणी ये माया नाम्नी महाशक्ति अनुग्रहात्मरूपा उत्पन्न होती भई, जासे समर्थ ईश्वर सब को रचते भये ॥२५॥ गुणमयी काल की शक्ति से माया में पुरुषरूप करके वीर्यवान् वीर्य को धारण करते भये ॥ २६॥ काल-प्रेरित अव्यक्त माया से महत्तत्त्व भयो, तमोगुण को नाशक विज्ञान आत्मा जीव के देह में स्थित होकर विश्व को प्रकाशित करतो भयो ।२७॥ सो जीव अंश गुण काल आत्मा भगवत की दृष्टि के सामने या विश्व के रचने की इच्छा करके जीवात्मा अपने आत्मा को रूपान्तर करते भये ॥२८॥ महत्तत्त्व जब विकार को प्राप्त भयो, तब अहं तत्त्व भयो । कार्य कारण कर्ता जीव पञ्चभूत इन्द्रिय मनोमय होतो भयो ॥२९॥ वह अहंकार वैकारिक तैजस तामस भेद से तीन प्रकार का भयो, अहङ्कार विकार को प्राप्त भयो तब वैकारिक अहङ्कार से मन भयो ॥३०॥ वैकारिक जो देवता भये उन से शब्दादिक गुण प्रकाशक होय हैं, रजःसत्त्वतमोमय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं (३१)

समीक्षा—यहां सृष्टि का किस प्रकार वर्णन किया है, जिस से श्लोक २५ में ईश्वरसे मायाशक्ति की उत्पत्ति लिखी है। यह बाबा आदम से हव्वा के पैदा होने की बात से मिलती है, इसी भागवत से यवनों के कुरान में यह शिक्षा गई होगी ॥

फिर श्लोक ३१ में तत्त्वमय ब्रह्मा विष्णु शिव को बताया और कहीं इन को साक्षात् जगदीश बताना भी चिन्त्य है । यहां नाभि कमल, जल सभी सूख गये जान पड़ते हैं ॥ आगे श्लोक ३४ में—

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥३४॥

इत्यादि श्लोकों में "आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापः" इत्यादि अपेक्षा वर्णन है । फिर—

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशयोगतः ।
नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥३८॥

अर्थात् इतने देवता ये जो पूर्व वर्णित हैं, विष्णु की कला हैं । इन का सामर्थ्य नाना होने से सृष्टि रचने का न हुआ, तब हाथ जोड़ स्तुति करने लगे । भला आकाश के हाथ कहां से आये ? अब से ब्रह्मा विष्णु शिव को साक्षात् भगवान् नहीं कहना चाहिये ॥

अ० ८ में शुकदेव जी कहते हैं कि मैत्रेय ने कहा कि—

प्रवक्ष्ये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद् भगवान् ऋषिभ्यः ।

अर्थात् वह भागवत कहता हूं जो साक्षात् शेष भगवान् ने ऋषियों से कहा था । सनत्कुमार सत्यलोक से गङ्गा जी में बहते २ सीधे हुवे पाताल में पहुंचे थे (अ० ८ । ५)

एक समय शेष जी ने सनत्कुमारों से भागवत कही थी वही भागवत "सांख्यायन" मुनि को सनत्कुमारों ने सुनाई । सांख्यायन ने पराशर और बृहस्पति हमारे गुरुओं को सुनाई, गुरुजी ने मुझे सुनाई मैं आपको सुनाता हूं॥

यहां भाषाटीका में लिखा है कि पिता को राक्षस द्वारा भक्षित सुन, पराशर जी राक्षसों का वध कर यज्ञ में प्रवृत्त हुवे, तब वशिष्ठ जी ने रोके और पुलस्त्य ने अपनी सन्तति की रक्षा की, प्रसन्नता में पराशर को वर दिया कि तुम पुराणवक्ता होगे ॥

समीक्षा—यह नई भागवत है, अब तक तो पराशर के पुत्र व्यास जी पुराणकर्त्ता थे, परन्तु उनके पुत्रमोक्त इस वचन में पराशर भी पुराणों के वक्ता हो गये ॥

इस से आगे अ० ८ में विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति है । ब्रह्मा को मोह हुआ कि मैं कहां से आया, क्या करूं, तब चार मुख वाले ब्रह्मा कमल की डण्डी की नाल में को नीचे घुसे, यह (१९) श्लोक में बताया है । शेष शय्या के रूप की शोभा भी खूब ही बखानी है । अ० ९ में ब्रह्मा ने कहा "ज्ञातोऽसि मेऽद्य" अर्थात् 'आज मैंने जाना' । इससे स्पष्ट है कि अब तक नहीं जाना था । यह नाभिकमल का ढकोसला न जाने कहां से आ गया जब कि पहिले सृष्टि का वर्णन तो कर ही चुके हैं ॥

अ० १० में दशविधसर्ग का वर्णन है । जिस में पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, भूत, प्रेत, पिशाच, गुह्यक सब की उत्पत्ति वर्णित है । अ० ११ में परमाणु आदि द्विपरार्धपर्यन्त तथा कल्प का वर्णन है । आगे अ० १२ में मन्वन्तर का वर्णन है, उस में प्रथम ही अन्धतामिस्त्र, तामिस्त्र, महामोह, मोह, तामसी रचना की । तब—

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥ २ ॥

पापी सृष्टि को देख ब्रह्मा दुःखी हुवे, फिर रचना की, तब सनकादि ४ मुनि रचे, यह ब्रह्मचारी हो गये, इन से ब्रह्मा ने सृष्टि रचनार्थ कहा, यह न माने, तब ब्रह्मा को कोप भया इससे 'रुद्र' हुवे ॥

रुद्र की रची सृष्टि सब ओर से जगत् को खाने लगी, सहस्रों यूथ खाये सुन ब्रह्मा को शङ्का हुई, कहा कि "बस करो, रहने दो, तप करो" ॥

समीक्षा–न जाने सहस्रों यूथ बिना ही रचों को कैसे मनोमोदकवत् खागये? केवल ४ सनकादि ही तो उत्पन्न हुवे थे, उनमें से एक भी नहीं खाया लिखा। क्या यह रुद्रयूथ परस्पर खाते थे, वह कोई अन्य ब्रह्मा रच रहा था?

रुद्र तपोर्थ गये तब ब्रह्मा ने १० पुत्र रचे, मरीच्यादि नाम के इस प्रकार से हुवे–"उत्संग" घोंटे से नारद । अंगूठे से दक्ष । प्राण से वशिष्ठ । त्वचा से भृगु । हाथ से क्रतु । नाभि से पुलह । कानों से पुलस्त्य । मुख से अंगिरा । नेत्रों से अत्रि, मन से मरीचि । दाहिने स्तन से धर्म । पीठ से अधर्म । अधर्म से मृत्यु । हृदय से काम । भौं से क्रोध । अधर ओष्ठ से लोभ । मुख से वाणी । लिङ्ग से समुद्र । गुदा से पापाश्रय मृत्यु हुवा । छाया से "कर्द्दम=देवहूति का पति" हुवा ॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः ॥
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२७॥

अर्थात् वाणी रूप बेटी ने ब्रह्मा का मन हर लिया। अकाम वाणी से ब्रह्मा सकाम हुवा, ऐसा सुना है ॥ २७ ॥

तमधर्मे कृत मतिं विलोक्य पितरं सुताः ।
मरीचिमुख्यामुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ २८ ॥
नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥ २९ ॥
तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ।
यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३० ॥

अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदिने पिताको सकाम जान रोका कि:—" ऐसा काम न किसी ने किया, न आगे कोई करेंगे, जैसा कि आप पुत्री गमन (पाप) करते हैं । तेजस्वियों को भी ऐसा नहीं चाहिये क्योंकि वे जैसा करते हैं,दुनियां भी वैसा ही कर सुख पाती है" । इस पर ब्रह्मा जी शर्मा गये और शरीर त्याग दिया, वह शरीर नीहार (कुहरा) संसार में अब भी वर्तमान है । इस पर भाषा टीका ने तो टिप्पणी लगाई है कि " यह अलंकार है । यहां सरस्वती रूप विद्या जाननी " ॥

हम भी इस को अलंकार ही मानते हैं परन्तु श्रीधरी आदि टीका-कारोंने यहां कुछ भी न कहा, यह आश्चर्य है । ऐसे अलंकारादि यदि भागवत में न होते तो क्या हानि थी और अलंकार है तो शरीर त्यागना, शर्म्म दिलानी,यह सब क्यों कल्पना करके प्रजा का मन बिगाड़ा ? ब्रह्मा के शरीर से लोभ मोहादि की भी उत्पत्ति लिखी है, क्या उन के भी कोई शरीर हैं? बस यह सब कल्पना शास्त्र से श्रद्धा हटाने को हैं । कहीं पापी सृष्टि को देख ब्रह्मा को दुःख होना, यह सब अश्लील कैसे क़िस्से हैं;वहां भी नाग के खाने से आत्मा पापी होगया है,कहीं आदम हव्वा कैसी कहानी यहां भी भरी गई हैं ॥

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेद ईश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥

अर्थात् ब्रह्मा ने ऋग्, यजु, साम, अथर्व । आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद (स्थापत्य), अर्थवेद चारों पूर्वादि मुखों से यथासंख्य रचे परन्तु इतिहास पुराण चारों मुखों से रचे । यहां यद्यपि पुराणों का नाम नहीं बताया है, यदि हमारे सनातनी भाई भागवतादि पुराणों का अर्थ करेंगे तो अब पराशर से भी पूर्व ब्रह्मा ही पुराणकर्त्ता हो गये ॥

यदि एक गवाह तीन बार तीन प्रकार से पृथक् बयान करे तो दावा ख़ारिज हो जाता है, आज पुराणकर्त्ता—व्यास, पराशर और ब्रह्मा तीन बता दिये, हम किस को सत्य मानें । फिर सूत वैशम्पायन आदि पृथक् रहे ॥

श्लोक ५२ । ५३ में मनु और शतरूपा की उत्पत्ति ब्रह्मा से बताई है,

सभी से मैथुनीसृष्टि चली है, मनु की ५ सन्तान हुईं, प्रियव्रत और उत्तानपाद २ पुत्र, तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति ३ कन्या ॥

अ० १३ में मनु से ब्रह्मा ने कहा–हे राजा मनु! प्रजा को उत्पन्न करो। रक्षा करो, तब मनु ने कहा कि प्रजा को कहां बसावें? पृथ्वी तो है ही नहीं। ब्रह्मा ने शोच किया तब ब्रह्मा की नाक में से छोट सा सूकर का बच्चा निकला, देखते २ अङ्गुष्ठमात्र से हाथी के समान होगया, मन्वादि चकित होगये। इसके नख रोम खुरादि सभी का वर्णन है, जो पार्थिव होते हैं ॥

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां सउत्थितः संरुरुचे रसायाः।
तत्रापि दैत्यं गदया पतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥

अर्थात् डूबी हुई धरती को अपने दांत पर रख कर दैत्य से गदायुद्ध लड़े ॥ क्या अच्छी पदार्थविद्या है। यदि दांत आदि वाराह का शरीर पार्थिव था, तो किस पृथिवी पर खड़े हो कर लड़े ॥

श्लोक २९ में "घ्राणेन पृथिव्याः पदवीं विजघ्रम्" भी लिख चुके हैं, इस से पार्थिव ही माना जा सकता है, क्योंकि पृथिवीत्व से ही गन्ध गुण जाना जा सकता है ॥

चौदहवें अध्याय में हिरण्याक्ष की उत्पत्ति लिखी है कि दक्ष की बेटी दिति मरीचि के पुत्र कश्यप की स्त्री थी, उसने सन्ध्या समय मुनि से वीर्यदान मांगा कि सौतेलो सन्तानों से मुझे दुःख है। भर्त्ता ने समझाई भी तो भी दिति ने वेश्या समान लज्जा त्याग पूजन करते मुनि की धोती खोल दी, भाव्य जान मुनि ने……किया, स्नान कर पुनः जप करने लगे, दिति ने शिव और पति की स्तुति की, तब पति ने कहा तेरा पोता भक्त होगा ॥

अ० १५ में दिति ने सौ वर्ष गर्भधारण किया, संसार में अन्धकार छा गया देवगण घबराकर ब्रह्मा की स्तुति करने लगे, कि यह क्या हुवा !!! ब्रह्मा ने कहा–मेरे सनकादि ४ पुत्र वैकुण्ठ गये थे, द्वारपालों ने इन्हें ७ वीं ड्योढ़ी पर बेत लगा के रोक दिया तब सनकादि को क्रोध आया, शाप दिया कि तुम दोनों इस पद के अधिकारी नहीं हो। हाथ जोड़ पग पकड़, अपराध स्वीकार किया। भगवान् लक्ष्मीसहित इस (केस) की बात सुन उठ आये ॥

अ० १६ में भगवान् ने फ़ैसला किया कि तुम असुरता को प्राप्त होकर फिर यहीं आ जोगे। इस शाप के वश वही दोनों राक्षस दिति के गर्भ में आये। श्लोक ३० में यह भी विष्णु ने कहा है कि लक्ष्मी ने मुझ से प्रथम ही कहा था कि ब्राह्मण आवेंगे, उन्हें द्वारपाल रोकेंगे ॥

फिर भला इन बेचारों का क्या दोष था ? यहां वैकुण्ठ की बनावट भी बहिश्त जैसी वर्णित है, न जाने कुरान ने पुराण से या पुराण ने कुरान से यह शब्द सीखे हैं। हमारे सनातनी भाई मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं मानते पर यह वैकुण्ठ से गिरना क्या है ?

अ० १७ में वर्णन है कि दिति के गर्भ जन्म समय गधे बोलने लगे, पक्षी घोंसले छोड़ भागने लगे, खून बरसने लगा, भयङ्कर वायु चला, उत्पात हुवे। कश्यप ने उन दोनों पुत्रों के हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष नाम धरे। हिरण्यकशिपु ने ३ लोक के लोकपालों को वश में कर लिया। छोटा हिरण्याक्ष गदा लेकर स्वर्ग गया, देवगण भाग गये, तब यह वरुणलोक को गया, वहां भी देख कर सब भागगये। वरुण ने कहा—सिवाय ईश्वर के आप से कौन लड़ सकता है, वह पाताल में हैं; इस बात को सुन कर रसातल को गया वहां वाराह जी को दांत पर पृथिवी धरे देखा और अ० १८ श्लोक ३ में कहा कि—

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता॥

छोड़, पृथिवी हम को ब्रह्मा ने दी है। फिर वाराह जी से युद्ध हुवा॥

समीक्षा—हम पौराणिकों से सुना करते थे कि धरती का बोरिया सा लपेट कर राक्षस लेगया था, सो यहां नहीं आया, कदाचित् वाराह पुराण में इस की विशेष कथा हो। यहां तो ब्रह्माने दी है, यही लिखा है। अ० १९ में हिरण्याक्ष मारा गया है। अ० २० में ब्रह्मा ने सृष्टि रची और—

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम्।
जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम्॥१९॥

तमोमय सृष्टि से अप्रसन्न हो ब्रह्मा ने अपना शरीर त्याग दिया, इस शरीर से रात्रि उत्पन्न हुई, यक्ष राक्षसों ने ग्रहण की। यक्ष राक्षस ब्रह्मा को खाने की सलाह करने लगे। और अद्भुत बात—

देवोदेवाञ्जघनतः सृजतिस्मातिलोलुपान्।
त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे॥ २३॥

ततो हसन्सभगवानसुरैर्निरपत्रपैः।
अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धोभीतः परापतत्॥ २४॥

ब्रह्मा ने जङ्घा से असुर रचे, वे कामी होकर ब्रह्मा से ही मैथुन करने दौड़े। निर्लज्ज असुरों की चेष्टा देख, ब्रह्मा हंस कर क्रोधित हुवे, भागे भगवान् से फ़र्याद की कि—

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनाऽसृजं प्रजाः ।
ताइमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

हे परमात्मन् ! मैंने तो आपके कहने से प्रजा उत्पन्न की, अब ये पापी मुझ से मैथुनार्थ पीछे पड़े हैं। प्रभो रक्षा करो ॥

सोवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ।
विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥

भगवान् इस ब्रह्मा की दीनता जानकर बोले कि हे ब्रह्मा ! अपना यह घोर शरीर त्याग दो, तब ब्रह्मा ने शरीर त्यागा और छम छमाती, उन्नतस्तनी, सुन्दर, गेंद उछालती स्त्री को देख दैत्य बोले कि तू कौन है ? कहां से आई है ? हेरफेर की बातें कर सन्ध्यानाम की स्त्री असुरों ने घेर ली ॥

समीक्षा—क्या यह ब्रह्मा जी का ही रूप था या कौन थी ? कुछ भी पता न दिया। श्लोक २८ में ब्रह्मा का शरीर त्यागना, २९ में स्त्री का वर्णन शङ्का में डालता है। ब्रह्मा का बार २ शरीर त्यागना भी अद्भुत बात है। एक बार पुत्री सरस्वती के अलङ्कार में, दूसरे इसी अध्याय श्लोक २० में, फिर श्लोक २८ में शरीर त्याग है, परन्तु फिर जन्म कैसे हुवा, यह पता नहीं। चौमुखे ब्रह्मा पुरुष पर उसी के रचे हुवे पुत्र असुर कैसे आसक्त हुवे ? क्या यह नेचर के विरुद्ध कुरीति उस समय भी थी ? कदापि नहीं ॥

इस प्रकार की कथा केवल सनातनियों के नीचा दिखाने के अतिरिक्त क्या मतलब रखती हैं, हम नहीं जानते कि ऐसी २ भद्दी रद्दी बातों के पुस्तक को धर्मपुस्तक कैसे कह सक्ते हैं। इस के घर बैठने पर ब्रह्मा ने अप्सरा बनाईं, फिर—

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीम्प्रियाम् ॥ ३९ ॥

फिर शरीर त्यागा। फिर भूत प्रेत पिशाच नंगे रहने वाले रचे निद्रा उन्माद रचे, आलस्य रचा, फिर पितर रचे, जिन का श्राद्ध होता है, सिद्ध विद्याधर किन्नर जो ब्रह्मा के त्यागे तनु थे, वह उन्हों ने पाये। क्या यह तनु कपड़े की पोशाक का तो नाम नहीं धरा है ?

फिर सर्पादि सृजे हैं, फिर ऋषि रचे । श्लोक ४८ में फिर शरीर त्यागा है । ब्रह्मा के मुर्दा बालों से सर्प हुवे, तब ब्रह्मा प्रसन्न हुवे और मनु सृजे ॥

पाठको ! यदि हम इस प्रकार भी अध्याय वार वर्णन करेंगे तो पुस्तक बहुत बढ़जावेगी, इसलिये आगे संक्षेपसे किसी२ कथा का वर्णन ही करेंगे ॥

अ० २१ में मनु की पुत्री देवहूति में कर्दम से कैसे सन्तान हुई ? इत्यादि प्रश्न हैं । तब कर्दम के तप का वर्णन और भगवद्दर्शन की कथा में भगवान् को गरुड़ पर सवार बताया है । श्लोक ११ अ० २२ में—

मनु ने स्वकन्या कर्दम से विवाहने की प्रार्थना की तो कर्दम ऊटपटांग कहते हैं कि इस से अवश्य विवाह करेंगे ? क्वारी है और जब यह अपने महल पर गेन्द खेलती थी, तब विश्वावसु इस के रूप को देख विमान से गिर पड़ा था ॥

समीक्षा—वाह री सभ्यता ! जैसे आजकल असभ्य संगीत गीत गाते हैं कि (कितने तैने घायल कीने, कितने लोट पोट) इत्यादि ॥

अभी गरुड़ पक्षी कद्रू विनता से उत्पन्न हुवे ही नहीं थे, भगवान् पहले ही कहां से चढ़ बैठे ॥

अ० २२ श्लोक २९ । ३१ में लिखा है कि वाराह अवतार ने जहां शरीर कम्पाया था, उस के झड़े रोंगटों से कुशा हुई इसी लिये यज्ञ रक्षार्थ काम में आती हैं । श्लोक ३४ में इस कथा के श्रवण से कलियुग में उद्धार कहा है । अ० २३ में देवहूति को कर्दम ने सारा भूलोक विमान में बैठाय, दिखाय ९ कन्या उत्पन्न कर फिर १०० वर्ष भोग किया, जो क्षणमात्र प्रतीत हुवा । अ० २४ में कर्दम से कपिलावतार बताया है, वहां जब गर्भ में—

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणिः ॥ ६ ॥
अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घना घनाः ।

अर्थात् परमेश्वर कर्दम के वीर्य में वास कर देवहूति के गर्भ में आये, तब आकाश में बाजे बजे, अप्सरा नाचीं इत्यादि ॥

समीक्षा—गीता में तो कृष्णचन्द्र ने कहा है कि जब २ धर्म की ग्लानि, अधर्म की वृद्धि होती है, तभी मेरा अवतार होता है, परन्तु यहां तो धर्मात्मा

प्रजा में ही कपिलदेव आ पहुंचे । माता को उपदेश करने आये, क्या कर्दम कम उपदेशक थे ? फिर गर्भवती से "नाना" ब्रह्मा कहते हैं कि तेरे गर्भ में कैटभासुर का मारक उत्पन्न होगा । देखो श्लोक १८ (इस के विरुद्ध मधुकैटभ का दुर्गापाठ में देवी से वध बताया है) ब्रह्मा की आज्ञा से कर्दम ने ९ बेटी मरीच्यादि को देदीं, विवाह विधिपूर्वक किया । भला यह कैसी विधि, जो मामाओं के साथ भानजी व्याही जावे ?

भीमसेनादि बहुत से पौराणिक कह देते हैं कि मानसीसृष्टि में यह पाप नहीं है, परन्तु यहां तो स्पष्ट मैथुनी प्रजा है, कन्या मैथुन से हुई हैं ॥

अ० २६ श्लोक ११ में २४ तत्वों की गणना है, परन्तु प्रथम ३१ तत्त्व बता आये हैं, देखो अ० ६ । २ यहां उसके विपरीत २४ हैं । अ० २८ में योगमार्गोपदेश है, उसमें भी श्लोक ६ में—

वैकुण्ठलीलाऽभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥ ६ ॥

अर्थात् एकान्त वासादि कहते २ वैकुण्ठ की लीला का ध्यान करना भी बताया है, सो ठीक नहीं ज्ञात होता, क्योंकि पुराणों ने वैकुण्ठ लीला में ऐश्वर्य का सामान, मद, मोह, मत्सरता, स्त्री, गान, वाद्य, युद्ध, शाप, सोना, जागना आदि सभी सांसारिक भोग लिखा है । फिर घर छोड़ कर वन में भी वही ध्यान बताना उचित नहीं है । श्लोक १४ से विष्णु का ध्यान प्राणायाम में जो बताया है, वह भी सब हारकङ्कणादिधारी शेषविहारी का ही वर्णित है, जो योगशास्त्र के प्रतिकूल है । अ० ३३ में लिखा है कि—

अहो बत श्वपचोऽतोगरीयान् यज्जिह्वाग्रेवर्त्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ते ये ॥

जिस की जिह्वा पर तेरा (परमेश्वर का) नाम है, वह चण्डाल भी श्रेष्ठ है, उन्हों ने तप, होम, स्नान, वेदपाठ सब कुछ कर लिया, जिन आर्यों ने तेरा नाम लिया ॥

हे सनातनधर्मियों ! यहां तो भागवत ही भङ्गियों को भी वेदपाठ करा कर आर्य बनाने=शुद्ध करने लगी ?

इति तृतीयस्कन्धसमीक्षा ॥ ३ ॥

* ओ३म् *

अथ चतुर्थस्कन्धसमीक्षणम्

(सगे भाई का बहन से विवाह)

प्रथमग्रासे मक्षिकापातः के अनुसार चतुर्थस्कन्ध में सब से पहिले ही एक महाअधर्म की शिक्षा लिखी है । अ० १ श्लोक १–६ तक देखिये ॥

मैत्रेयउवाच–

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥
आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ।
पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥
प्रजापतिः स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत् ।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥
यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥४॥
आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्या पुत्रं विततरोचिषम् ।
स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥
तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ।
तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥

अर्थ–स्वायंभुव मनु के तीन कन्या शतरूपा में उत्पन्न हुईं १–आकूति, २–देवहूति, ३–प्रसूति । आकूति "रुचि" को व्याही, उससे पुत्र पुत्री विष्णु-यज्ञस्वरूप और लक्ष्मी का अंश दक्षिणा नाम की हुईं । पुत्र (यज्ञ) को उस के नाना मनु ने रख लिया और (दक्षिणा) पुत्री पिता (रुचि) के घर रही, फिर सहोदर भाई यज्ञ का अपनी बहिन दक्षिणा से विवाह हुवा १२ पुत्र पैदा हुवे ॥

समीक्षा–१–इस से बढ़कर पाप साधारण पुरुष भी नहीं कर सकता फिर ईश्वरावतार जिस को २४ अवतारों में गिना माना है वह क्यों ऐसे पाप में प्रवृत्त हुवा ? जब कि अवतारों के कर्म लोगों को सिखाने को बताये जाते हैं ॥

नर नारायण अवतार

अ० १ श्लोक ४८

दक्ष प्रजापति ने १३ कन्या धर्म को ब्याहीं थीं, उन के नाम और सन्तान भी नीचे लिखे जानों । १ श्रद्धा से शुभ, २ मैत्री से प्रसाद ३, दया से अभय, ४ शान्ति से सुख, ५ तुष्टि से मुद्, ६ पुष्टि से स्मय, ७ क्रिया से योग, ८ उन्नति से ... ९ बुद्धि से अर्थ, १० मेधा से स्मृति, ११ तितिक्षा से क्षेम, १२ ह्री से प्रश्रय और १३ मूर्त्ति से नर नारायण उत्पन्न हुवे ॥

इन बारहों के पुत्रों के नाम विचार देखें यह मूर्त्तिमान् शरीरधारी नहीं हो सक्ते फिर एक तेरहवीं स्त्री से ही नर नारायण अवतार अविरूप कैसे बताये गये । इन तेरहों पुत्रियों के नाम भी शरीरधारी के से नहीं ज्ञात होते । इन दोनों अवतारों का स्वायंभुव मनु के समकालीन होना सिद्ध है परन्तु आगे श्लोक ५९ में अर्जुन श्रीकृष्ण बताये हैं । यथाः—

तावि॒मौ वै भगवतो ह॒रेरंशावि॒हागतौ ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥ ५९ ॥

यह तो इसी गत द्वापरान्त में हुवे हैं । आगे स्वाहा स्त्री से अग्निदेव की सन्तति का वर्णन है । अग्नि के ही सन्तान अग्निष्वात्त बर्हिषद् सौम्य और आज्यपा पितर हुए ॥

समीक्षा—आज कल सनातनी लोग अग्निष्वात्त आदि का अर्थ मरे पितर कहते हैं परन्तु यहां उत्पत्ति ही लिखी है ॥

दूसरे अध्याय में दक्षप्रजापति के यज्ञ का वर्णन है । दक्ष का अर्थ चतुर है और प्रजापति होने से भी उस के ज्ञान मान का अनुमान हो सक्ता है तथापि उस ने अपने जामाता शिव को (जैसे कि पौराणिक ईश्वर मानते हैं) बड़ी निन्दा से पुकारा है, नमूने के लिये दो श्लोक लिखते हैं:—

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ।
अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥
चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्नस्थिभूषणः ।
शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तोमत्तजनप्रियः॥ १५ ॥

अर्थात् शिव प्रेतों में यामी, रोता, हंसता, मनुष्य की हड्डी की माला धारे अशिव है। प्रजापति की यह राय है। अध्याय ५ श्लोक १ में शिव की जटा से वीरभद्र की उत्पत्ति लिखी है। क्या बालों से बच्चा या जवान पुरुष पैदा हो सकता है? अ० १३ में मैत्रेयउवाच-श्लो० २४ से आगे तो था ही पुनः १८ से आगे लिख दिया है। और वेन की उत्पत्ति भी यज्ञ से हुई है, फिर न जाने अधर्मी क्यों हुआ। अ० १४ में वेन राजा के देह मंथन से (निषाद) भील का पैदा होना, अ० १५ में पृथु राजा की उत्पत्ति, अर्चि देवी का अवतार भी लिखा है, यह भी जोड़िया ही हुवे हैं। श्लो० २ में लिखा है:-

तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः।

श्लो० ६ में-

एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकाभिरक्षया।

इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी॥ ६॥

अर्थात् यह जोड़ा हुवा है, यह साक्षात् हरि का अवतार है, यह रानी लक्ष्मी हुई॥

हम नहीं कह सकते कि मर्दों के देह से सन्तान हो और फिर भी बहन भाइयों में स्त्री पुरुषों का व्यवहार कैसे हो सक्ता है। सभी अवतारों के दोष धर कर पुराण कैसे माथा ऊंचा कर सक्ते हैं? अ० १९ श्लोक २४। २५ पृथु के अश्वमेध में से इन्द्र ने घोड़ा चुराने के लिये बहुत से फ़कीरी बाने बनाये, वही पाखण्ड चिह्न दिगम्बर जैन बौद्ध बताये गये हैं। यथा इस श्लोक की टीका में स्पष्ट लिखा है कि-

तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते॥ २३॥

धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु। पेशलेषु च वाग्मिषु २५

इस पर श्रीधरी टीका भी (नग्ना जैनाः रक्तपटा बौद्धाः कापालिकादिकाः) इस से सिद्ध है कि भागवत के कर्त्ता से पूर्व जैनी हो चुके हैं। इन्द्र को यज्ञ में पाखण्डी बताना भी चिन्त्य है। अ० २३ में उसी अर्चि रानी का पृथु के साथ सती होना भी लिखा है जो वेन के शरीर से पृथु के साथ ही पैदा हुई थी। यथा-

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम्॥२०॥

००० विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २३ ॥

अर्थात् अर्चि रानी वन को गई, मरने पर पति के चरणों का ध्यान करके अग्नि में प्रवेश कर गई । (यह सारे बहुत थे, सन्तान भी हुई) फिर सती हुई । यह सती की चाल पुराणों से प्रचलित होगई है । अ० २८ में एक २ स्त्री से एक एक अरब १०००००००० सन्तान लिखी हैं ॥

एकैकस्यां भवत् तेषां राजन्नर्वुदमर्वुदम् ॥ ३१ ॥

झूठा टूवा मारे तौ फिर कमी क्या थी, पूरी ९ संख्या ही लिखे ! ! ! अ० २९ में लिखा है कि साक्षात् शिव मनु दक्षादि सनकादिक मरीच्यादि भी देखते हुवे भी परमेश्वर को नहीं देखते । यथा—

पश्यन्तोपि न पश्यन्ति पश्यन्ति परमेश्वरम् ।

अब शिव को साक्षात् भगवान् किस प्रकार कह सक्ते हैं । इति ॥

—:0:—

* ओ३म् *

अथ पञ्चमस्कन्धसमीक्षणम्।

ब्रह्मा को ईश्वर बताने वाले पौराणिक यदि ध्यान देकर भागवत के स्कन्ध ५ अ० १ श्लोक १४ । १५ को भी पढ़लें तौ ज्ञात हो जाय कि ब्रह्मादि कर्मबन्धन से सुख दुःख भोगते हैं, वहां प्रियव्रत से ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि हे पुत्र ! जिन की वेदवाणी रूप डोर में अति दुस्तर गुण कर्मों से बन्धे हुवे हम सब ईश्वरार्थ ऐसे भेट देते हैं, जैसे नाथ में बंधे चौपाये बैल मनुष्यो के कार्य करते हैं ॥ १४ ॥

हे अङ्ग ! कर्मानुसार ईश्वर के दिये हुवे सुख दुःख हम भोगते हैं । हम ईश्वर के आधीन ऐसे योनियों में जाते हैं जैसे सुमाखे के पीछे अन्धा चलता है, चाहे वह धूप में लेजावे चाहे ठण्ड में ॥ १५ ॥

दण्डक १९ में लिखा है कि प्रियव्रत के पुत्र परम हंस हो गये और ग्यारह अरब वर्ष राज्य किया, नित्य स्त्रीसम्भोग करता रहा। जब कि सृष्टि ही ४ अरब* वर्ष रहती है, उसमें १४ मनु होते हैं, फिर स्वायंभुवके पुत्र प्रियव्रत का राज्य ११ अरब वर्ष लिखना गप्प नहीं तौ क्या है ? पुराणानुसार भी लक्ष वर्ष से अधिक किसी युग में भी आयु नहीं होती ॥

* सृष्टि का समय वेद मनु महाभारतादिमेंपुराणों में और नित्यके संकल्पों तक से ४ अरब वर्ष का ही पाता है, विस्तार के भयसे यहां नहीं लिखा गया ।

समुद्रों का वर्णन—

अ० १ श्लो० ३१ में लिखा है । यथा—

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन्यत एव कृताःसप्तभुवोद्वीपाः ॥ ३१ ॥

राजा प्रियव्रत ने यह सोच कर कि सूर्य रात्रि को नहीं रहता इतने मैं अपना प्रकाश करूंगा, सात परिक्रमा सूर्य के रथ समान अपना रथ बनाय उस रथ में बैठ कर कीं ॥ ३० ॥ ये जो समुद्र हैं उसी के पहिये की लीक हैं। इसी से सात द्वीप बने हैं ॥ ३१ ॥

यहां भागवत ने वेद का विरोध किया है । क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । यजु० १० ।१९०।३
ततः समुद्रोअर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ॥
समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ॥

इत्यादि प्रमाणों से समुद्र का होना सनातन सिद्ध है,और भागवत ही में क्षीरसागर समुद्र में विष्णु का शयन, ब्रह्मा की जल से उत्पत्ति आदि लिखी है, फिर यहां सात समुद्रों का प्रियव्रतरथनेमि की लीक से उत्पन्न, लिखना भूल ही सिद्ध करता है । भाषा टीकाकार ने भी यहां शङ्का की है कि राजा का रथ आकाश में घूमता था फिर पृथ्वी पर समुद्र कैसे बने ?

एक से रथ से समुद्रों में यह भेद कैसे हुआ कि एक से दूसरा द्विगुण तीसरा उस से भी द्विगुण इसी प्रकार एक सी लम्बाई चौड़ाई के रथ से पृथक् २ आकार वाले समुद्र कैसे बने ?

इस का उत्तर भी स्वयं दिया है कि इस के रथ के सारथि को उतार भगवान् स्वयं सारथि बन जाते थे,रथ को बढ़ा लेते थे। परन्तु यह पाठ मूल में नहीं है, कल्पना मात्र है। हम यह प्रश्न करते हैं कि यह इतना बड़ा रथ जब चला होगा तो घोड़े कहां पांव रखते थे? तथा धुरा पृथ्वीसे कितना ऊंचा था, बना कहां था ? (भाषाटीकाकार यह भी लिखते हैं कि ब्रह्मा ने स्वायंभुव मनु से जो सृष्टि रचना कराई तब उन्होंने ७ समुद्र ९ द्वीप नहीं बनाये) परन्तु रथ का दूसरा पहिया कहां रहा, यह नहीं बताया ? क्या बाइसिकल के समान था ?

इस में १ खारी जल, २ ईख का रस, ३ मदिरा, ४ घृत, ५ क्षीर (दूध) ६ मट्ठे और ७ सातवां शुद्ध जल का समुद्र है । यदि ईख के रस का समुद्र है तो कोई कहां गई, ईख के रस से पौराणिक भाई मिठाई बनाकर व्यापार करें तो लाभ है परन्तु यह तो सड़ कर सिरका होगया होगा । न जाने यह किसने भरे हैं, यह नहीं लिखा । भूगोलविद्याविद् मण्डली ने सब समुद्रों को क्षार ही पाया है, ज्योतिष के ग्रन्थों में भी क्षार समुद्र का ही वर्णन है, फिर न जाने पुराण वालों को ईख,का रस, मदिरा, घृत, दूध, मट्ठा कहां से सूझा ?

अ० २ में प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र ने तो ब्रह्मा की पूजा पर्वत में आरम्भ की और ब्रह्मा ने पूर्वचित्ती अप्सरा भेजी । भला यह न्याय कैसा है कि भक्त को शुभ कर्म से हटावे ? उस अप्सरा से "अयुतायुत परिवत्सरोपलक्षणम्०" १९ * (दश हज़ार को अयुत कहते हैं, यहां तो 'अयुताऽयुत' कहा गया है जो दश लक्ष होते हैं, परन्तु टीका ने दश हज़ार ही अर्थ किया है) संयोग किया, नौ पुत्र उत्पन्न किये ॥

आगे दण्डक २० में "सासूत्वाऽयस्तुतान्नवानुवत्सरंगृहएवाऽपहाय०" अर्थ-वह अप्सरा प्रतिवर्ष एक बेटा पैदा कर ऐसे ९ बेटे ब्रह्मा जी पर छोड़ चली गई । यहां गणितशास्त्रविद् भी चक्कर खाते होंगे, प्रतिवर्ष एक पुत्र होने पर भी ९ बेटे ही हुवे । १०००० वर्ष व्यर्थ भोग हो रहा । बलिहारी ! गणक जी ! अध्याय ३ में नाभि राजा के पुत्र ऋषभदेव जी की उत्पत्ति है, यह २४ अवतारों में गिने जाते हैं, परन्तु स्वयं भाषा टीका में लिखा है कि यह जैनमत प्रवर्त्तक थे । इस से सिद्ध है कि जैनमत भी पुराणों की शाखा है जो वेदों और ईश्वर को भी नहीं मानते हैं । इन को ईश्वरावतार लिखने से हमें संदेह है कि कदाचित् यह कथा जैनियों ने ही पुराणों में लगाई होगी ॥

अ० १६ दण्डक ५—

योवाऽयं जम्बूद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो
नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥

---

* द्वितीयाध्याय में छठे दण्डक के भाषाटीकाकार ने छट्ठे पर अङ्क नहीं दिया है और २० वें पर दो कर दिये हैं । इस लिये १ दण्डक आगे पीछे का फ़र्क़ हो गया है ॥

जम्बूद्वीप कमलपत्र सा १ लाख योजन वर्तुल है । पूर्व अध्यायों में कह चुके हैं कि एक समुद्र से दूसरा दुगना है तो उस के बीच का भाग भी द्विगुणा ही होगा * इस हिसाब से १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ लाख योजन ये सातों द्वीप हुवे । योग १२७ लाख योजन होते हैं । इस के यदि ५ मील का योजन मान कर मील बनाये जावें तो ६३५ लाख मील होते हैं । इस में समुद्रों की योजन संख्या और जोड़ी जाने से पूर्व यह निश्चय करना है कि क्षार समुद्र शत योजन विस्तीर्ण लिखा पाया जाता है । यदि इस का पाट १०० योजन है तो दूसरे समुद्र का २०० योजन पाट होगा और वह चारों ओर को ऐसे ही फैला हुआ होगा तो बहुत अधिक भूमि को घेरेगा, इसी प्रकार तीसरा चौथा भी समझना चाहिये, परन्तु हम द्विगुणा ही रकबा लगावें तो करोड़ों मील का विस्तार हुआ ॥

सिद्धान्त शिरोमणि के गणिताध्याय में लिखा है कि—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः ।
तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवोऽथप्रोच्यते योजनैः ॥

अर्थात् पृथिवी की परिधि ४९६७ योजन है । यदि ५ $\frac{१}{२३०}$ मील का एक योजन मानें तो २४८५६ मील होते हैं, यही परिधि योरोप के वासी विज्ञानविदों ने मानी है, तथा इसी श्लोक में व्यास १५८१ योजन का बताया है, यह भी उक्त विद्वानों की सम्मति का समादर कारक है । कुछ हम ही पुराण खण्डन नहीं करते हैं, पूर्व भास्कराचार्य जो सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के कर्त्ता हुवे हैं, वह भी स्वयं पुराणोक्तभूगोल का खण्डन अपने ग्रन्थ में इस प्रकार कर गये हैं । यथा—

कोटिघ्नैर्नखनन्द षट्क नख भू भूभृद् भुजङ्गेन्दुभि-
ज्योतिः शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः ॥
तद् ब्रह्माण्ड कटाह सम्पुट तटे केचिज्जगुर्वेष्टनं—
केचित् प्रोचुरदृश्य दृश्यक गिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥

अर्थ—(१८७१२०६९२०००००००० योजन को ज्योतिष शास्त्र के जानने वाले सारी सृष्टि का एक छोटा भाग मानते हैं । बहुत से इस को पृथ्वी की परिधि का मान समझते हैं और पौराणिक विद्वान् केवल इस को लोकालोक पर्वत की ऊंचाई समझते हैं ॥

* अ० २० में एक से दूसरा द्विगुणा लिखा ही है ॥

इस से सिद्ध है कि पौराणिक भूगोल का मान्य पूर्वाचार्यों में भी नहीं था। पृथ्वी को कमलपत्रवत् चपटी बताना और सुमेरु को जड़ में १६ हज़ार ऊपर से ३२ हज़ार योजन और एकलक्ष योजन ऊंचा बताना भी भूल है। कोई भी पर्वत ऐसा नहीं जो ऊपर चौड़ा नीचे से पतला हो। तथा एक लाख योजन ऊंचा हो, जड़ इतनी पतली हो, यह तो टूट ही पड़ता। तथा च पृथ्वी को चपटा मानने का खण्डन भी सि० शि० में लिखा है—

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरपि नेक्ष्यते ॥ १ ॥

अर्थ—यदि पृथिवी चपटी दर्पणोदर धरातल के समान होती तो सूर्य—पृथिवी के ऊपर गया हुवा भी सायंकाल के पीछे मनुष्यों को क्यों नहीं दीखता॥

धरती के चपटी होने पर और भी एक आश्चर्य की बात है कि सात समुद्रों के आठ द्वीप होने चाहियें क्योंकि सात दरों के आठ स्तम्भ होते हैं, फिर सात द्वीप लिखना भूल ही सिद्ध होती है॥

आगे पृथिवी का घूमना वैदिक मन्त्रों और प्राचीन ज्योतिष आचार्यों के मत से लिखा जाता है। पाठक विचारें कि पुराण वेद के कैसे प्रतिकूल हैं भूमि अपनी कक्षा में स्थित होकर सूर्य की परिक्रमा करती है। यथा हि—

या गौर्वर्त्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते

(ऋ० १० । ६५ । ६)

अर्थ—(या गौः *) जो पृथिवी (अवारतः) निरन्तर अर्थात् सदा (पयो दुहाना) अन्न, रस, फल, फूल आदि पदार्थों से प्राणियों को पूर्ण करती तथा (व्रतनीः) अपने नियम का पालन करती (प्रब्रुवाणा) परमेश्वर की महिमा का उपदेश करती (दाशुषे वरुणाय) दानी और श्रेष्ठ जन को (देवेभ्यः) और विद्वानों को (हविषा दाशत) अनेक सुख देती (वर्त्तनिम्) अपनी कक्षारूप मार्ग में (विवस्वते) सूर्य के (पर्येति) चारों ओर घूमती है॥

* पृथिवी का नाम निघं० १। १ में "गौः" है, जिस का अर्थ "गच्छतीति गौः जो चलती है सो गौः" (भूमि) है। इस से भी सिद्ध है कि आर्य लोग भूमि का चलना मानते थे॥

पृथिवी केवल सूर्य के चारों ओर ही नहीं घूमती किन्तु साथ ही साथ अपनी (अक्ष) कीली पर भी घूमती है, जैसे लट्टू अपनी कीली पर भी घूमता है और अपनी जगह से भी हटता है और जैसे गाड़ी का पहिया अपनी धुरी पर घूमता है और साथही साथ सड़क परभी घूमता जाता है। इस में प्रमाण यह है-

आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरंच प्रयन्त्स्वः॥

(ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४७ और यजु० अ० ३ मं० ६)

अर्थ-(अयम्) यह (गौः) पृथिवी लोक (मातरम् *) जल को (असत) प्राप्त होकर अर्थात जल के सहित (पृश्निः) अन्तरिक्ष में (आक्रमीत) आक्रमण करता है अर्थात् अपनी धुरी पर घूमता है। (च) और पितरम् †) सूर्य के भी (पुरः प्रयन्) चारों ओर घूमता है ॥

इस विषय में बहुधा मनुष्य कई प्रकार की शङ्का किया करते हैं कि पृथिवी चलती हुई प्रतीत क्यों नहीं होती ?

उत्तर-कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः॥ सिद्धान्तशिरोमणि॥

अर्थ-जैसे कुम्हार के घूमते हुवे चाक (चक्र) पर बैठे हुवे कीड़े उस की गति को नहीं जान सकते, ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई नहीं प्रतीत होती। अन्यच्च-आर्यभट्टीये-

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानिभाति तद्वत् सपश्चिमगानि लङ्कायामिति॥

अर्थ-जैसे नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर वस्तुओं को दूसरी ओर से चलते हुवे से देखता है ऐसे ही मनुष्यों को सूर्यादि नक्षत्र जो स्थिर हैं,

* यहां जल को अलङ्काररूप में पृथिवी की माता कहा है। यथाह—
तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निःअग्नेरापः"अद्भ्यः पृथिवी"इत्यादि॥तैत्ति०उ०॥

† यहां सूर्य को अलङ्काररूप से पृथिवी का पिता कहा है क्योंकि सूर्य ही से पृथिवीकी,(अपनी कक्षा में) स्थिति,मनुष्योंका जीवन,वर्षा और उस से वनस्पति आदि की उत्पत्ति होती है॥

पश्चिम की ओर चलते हुवे से दीखते हैं और पृथिवी स्थिर प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में भूमि ही चलती है ॥

दण्डक १२में चार वृक्षों का वर्णन है कि ११ हज़ार योजन ऊंचे चारों वृक्ष हैं। आम, जामन, कदम्ब और बट; इनके फल आठ सौ इकसठ हाथ लम्बे वायुपुराण में लिखे हैं, फल कुवडों में आकर गिरते हैं, उन की चारों नदी चारों दिशाओं को बहती हैं, उन में स्नान करते हैं। भारतवर्ष की ओर को जम्बू नदी बहती बताई है। यथा द० १९—

एवं जम्बूफलानामऽत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणा।

विना गुठली की जामन हाथी सी गिरती हैं, ४० कोस तक सुगन्ध देती नदी बहती है। अन्यों की तो ख़बर नहीं, पर जम्बू नदी तो इधर ही होनी चाहिये थी, सो है नहीं ॥

इस पर भाषाटीकाकार व संशोधक पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र भारतधर्म-महामण्डल के महोपदेशक के हृदय में भी शङ्का हुई थी, टिप्पणी में चित्त कांपना छिपजाना लिखा है, परन्तु उत्तर में यही कह टाल दिया है कि सभी वर्णाश्रमधर्म लुप्त हो गये, तो भगवान् भी डर गये कि यह दुष्ट लोग इन स्थानों को भ्रष्ट कर देंगे, अतः छिपा दिये हैं, किसी का प्रभाव हर लिया है। वाह क्या ठीक उत्तर है ॥ द० २८—

सुमेरु के ऊपर १० हज़ार योजन लम्बी ४ हज़ार चौड़ी ब्रह्मा की बनाई स्वर्णपुरी है—अ० १७ में द० १॥

तत्र भगवतः साक्षाद् यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिंजल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमलासाक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार ॥ १ ॥

जब वामन अवतार बलि के यज्ञ में पृथिवी नापते थे तब बायें पांव का अंगूठा ब्रह्माण्ड फोड़ बाहर निकल गया उस से जलधारा चरणकमलों केसर को धोने से लाल २ हज़ार युगों में नीचे गिरी, वह गङ्गा है ॥

समीक्षा—(१) ब्रह्माण्ड के फूटने से पानी निकलना कैसी असम्भव बात है, क्या ब्रह्माण्ड के बाहर पानी है? क्या ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर का यह अर्थ है कि कोई अण्डे जैसा गर्भ हमारी पृथिवी और सूर्यादि के चारों ओर है और वह अण्डा नाके के अण्डे के समान कहीं जल के पास धरा है?

(२) वह धारा लाख रुद्र शेखर को लेकर १००० युग में तो उतरी परन्तु इतनी बनी ही रहती तो अब गङ्गा में इतना जल क्यों नहीं?

(३) हजार युग तो एक मन्वन्तर में भी नहीं होते ७१ चतुर्युगियों का ही १ मन्वन्तर होता है तो १ मन्वन्तर के २८४ युग हुवे ॥

(४) यदि १००० युग में वहां से पानी की गति नीचे को हुई तो कितनी दूरी से वह जल गिरा, आप स्वयं अनुमान कर सकेंगे। यदि १ मिनट में १ मील से जल गिरे तो भी १ घण्टे में ६० मील १०० घण्टे में ६००० मील हुवा तो महीनों वर्षों में ही करोड़ों मील हो जावेगा फिर युग कहां, युग पर भी सन्तोष नहीं १००० युग बता दिये हैं १००० युगों को तो प्रलय समय द० १५ में तो कल्पान्त होजाता है, फिर कल्प के मध्य में यह वृत्तान्त आना असम्भव क्यों नहीं?

इलावृतेतु भगवान् भवएक एवपुमान्नह्यन्यस्तत्राऽपरो निर्विशति

इलावृत खण्ड में तो शिव ही एक पुरुष है (अन्य सब स्त्रियां ही रहती हैं)

समीक्षा—भला वहां सृष्टि कैसे होती है? स्त्रियों को कौन पैदा करता है?

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो०

हजार अरब स्त्रियां वहां रहती हैं (यहां नाथ शब्द बहुवचनान्त है। इस से वहां अन्य पुरुष रहने सिद्ध हैं ॥

अ० १८, १९ में प्रत्येक खण्ड (वर्ष) में एक २ अवतार की स्तुति एक २ भक्त करता है, ऐसा लेख है। तो क्या इलावृत में कोई दूसरा भक्त स्तुति करता है, वहां तो कोई पुरुष है ही नहीं स्तुति करने कहां से आगया। तथा समय नहीं लिखा, क्या सदाकाल एक ही पुरुष स्तुति करता रहता है? भारत वर्ष में नरनारायण तप करते और नारद स्तुति करते हैं ॥ अ० १९ द० ९। १०

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्याऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥

भाषाटीकाकार कहते हैं कि—मानसोत्तर और सुवर्ण पर्वत के बीचमेंजितनी भूमि है उतने ही प्रमाण की एक करोड़ साढ़े सत्तावन लाख योजन दूसरी भूमि स्वादिष्ठ जल के सागर के आगे है, उस में प्राणी रहते हैं, उस से परे सुवर्णमय भूमि है ॥

यह ६द्वीप का वर्णन है क्योंकि मानसोत्तर दधि मण्ड (मठे) के समुद्र से आगे है ॥ पुष्कर द्वीप छठा लिखा है यहां भी गड़बड़ है क्योंकि उसमेंआगे ७ वें का वर्णन और भी है, समझ में नहीं आता कि जब मट्ठे का समुद्र छठा है और उस से आगे ही मानसोत्तर लिखा है, इसी को पुष्कर द्वीप कहा है फिर वह सातवां क्यों नहीं हुआ ॥ अ० २० द० २९ । ३० देखो । इसी मानसोत्तर और सुमेरु के बीचके भूभाग का उक्तवर्णन है इस को स्वादूदक समुद्र शुद्ध जल से घिरा भी उक्त दण्डकों में बताया है । और फिर द० ३४

ततः परस्तात् लोकालोकनामाचलो० ३४

इस द्वीप से परे लोकालोक नाम पर्वत है इत्यादि लिखा है । यह पर्वत तो सात के चारों ओर होने से क्रोड़ों मील लम्बा चाहिये जो सर्वथा झूठ ही हो सकता है ॥

भाषाटीकाकार " आदर्शतलोपम " के अर्थ को छोड़ गये हैं । क्योंकि आज कल तो भूमि को सभी अण्डाकार मानते हैं । भास्कराचार्य नेदर्पणाकार पृथिवी का खण्डन किया है जो हम पूर्व लिखा चुके हैं । ८ करोड़ ३९ योजन है वह स्वर्णमयी है और शीशेके समान है । यहां शिव तन्त्र का प्रमाण दिया है कि पृथिवी ९५३५०००० के परिमाण में है । हम ४९६७योजन पृथिवी की परिधि का परिमाण पीछे दे आये हैं । देखो पृ० (६३)

अब सातवें द्वीप से भी आगे अर्थात शुद्ध स्वादूद समुद्र से आगे क्रोड़ोंयोजन भूमि बताना भारी भूल भान होती है । क्योंकि यहां तो लोकालोकबताया है, अभी स्वर्णमयीभूमि बतानेलगे । आगे पृथिवी का समस्तविस्तार५०क्रोड़ योजन बताया है । यथा—

एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः, स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः । द० ३८ अ० २० ॥

समस्त पृथिवी ५० क्रोड़ योजन है उस के चौथाई भाग में लोकालोक पर्वत है॥

द० २५ के कहे १५५५०००० योजन का विस्तार स्वादूद से बाहर का और इतनी ही भूमि सुमेरु पुष्कर के बीच की लगाने से ३१५०००८० योजन होते हैं। यदि शिवतन्त्रोक्त८३९७८००० योजन को भी मिलालें तो भी ११५४००००० योजन ही होता है ५० क्रोड़ तो फिर भी नहीं हुवे॥

"अण्डमध्यगतः सूर्य्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्।
सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः॥

अ० २० श्लोक ४३ श्रीधरी टीका-

अण्डमध्यगतः किंतन्मध्यं तदाह द्यावाभूम्योः पूर्वोत्तर कपालयोर्यदन्तरं मध्यस्थानं सर्वतः पञ्चविंशतिकोट्यः४३

अर्थात् पृथिवीऔरसूर्यमण्डल के बीच २५ कोटि योजन का फ़ासला है। टीकाकार भी सूर्य शब्द का अर्थ द्युलोक करते हैं, यह भूल है॥"

आगे अ० २१ द० ७ में ९५१०००८० योजनका फ़ासला सूर्यमानसोत्तरकी भूमि का बताया है, इस लिये परस्पर विरोध है॥

अ० २१ द० २ में वर्णित है कि दिव मण्डल व भूमण्डल द्विदल समान हैं, टीका ने लिखा है कि जैसे दोनों दल बराबर होते हैं, ऐसे ही भूमि के समानही दिव्मण्डल भी है, जिसे खगोल कहते हैं। यथाद्विदलयोःइत्यादि॥

समीक्षा-यह भारी भूल है, पृथ्वी से बड़े २ बहुत बड़े लोक सूर्यादि (द्युलोक) खगोल में विराजते हैं, फिर भूगोल के समान ही खगोल कैसे हो सकता है॥

द० ३ में-स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत संज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमान यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणिदीर्घ-ह्रस्वसमानानि धत्ते॥ ३॥

यदामेषतुलयोर्वर्त्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति॥

अर्थात् सूर्य उत्तरायण दक्षिणायन में मन्द, शीघ्र, और समान गति से चलता है ॥३॥ जब मेष तुल राशि पर आता है तब दिनरात्रि समान होती हैं ॥

समीक्षा—सूर्य सदा एकसी गति चलता है, पृथ्वी भी सदा एक ही गति पर चलती है, यह तो पृथ्वी की गति से ऋतुभेद होता है, इसी से अयन भेद भी होता है। मेष तुल में रात्रिदिन समान बताना भी भारी भूल है; जब कि गवांर भी "१२ कन्या १२ मीन दिनरात बरोबर कीन" कहते हैं। सदा कन्या मीन के सूर्य में ही दिनरात बराबर होता है ४

"यदा वृषभादि पञ्चसु च राशिषु चरति तदा अहान्येव वर्द्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु" ॥४॥

अर्थ—जब सूर्य वृषभादि राशियों पर चलता है तब दिन बढ़ते हैं और रात्रि प्रतिमास १ घड़ी घटती है ॥

समीक्षा—यह भी भूल है क्योंकि उत्तरायण धन के सूर्य के ९। १० अंशों पर हो जाता है तभी से दिन बढ़ता है, ६ मास बढ़ता है, फिर ६ मास घटता है। और कन्या के १२ अंशों पर पूरा ३० घड़ी हो जाता है, दिनरात बराबर होते हैं इधर मीन के १० अंश से ऊपर ही दिनरात बराबर होजाते हैं यह गणित शास्त्र भागवतकर्त्ता को नहीं आता था, यही ज्ञात होता है। टीकाकार भी ऐसे ही हैं ॥

द० २ में जहां सूर्य त्रिलोकी को तपाता है, लिखा है, उस पर टीका भी शङ्का करती है कि सूर्य पाताल में प्रकाश नहीं पहुंचाता फिर व्यासदेव ने त्रिलोकी क्यों कहा। उत्तर भी खुद ही दिया है कि शुकदेव जी ने भूमि के नीचे के सात लोक की कथा नहीं कही है, पृथ्वी के ऊपर के तीन लोक मान कर उन का ही वर्णन है। धन्य। अ० २४ में तो पाताल के सातों घरों का वर्णन किया है ॥

"सूर्य्य की दूरी

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्त्तनस्योपदिशन्ति ॥ ७ ॥ अ० २१

अर्थात् मानसोत्तर पर्वत के ऊपर ९ करोड़ ५१ लाख योजन दूर सूर्य घूमता है।"

सूर्य की गति ।

यदा चैन्द्र्याःपुर्याः प्रचलते पञ्चदश घटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वययोजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥

जब इन्द्रपुरीसे सूर्य चलताहै तब १५ घड़ीमें सवा दो कोड़ १२५०००० सवा बारह लाख कुछ ऊपर चलता है। सवा दो कोड़ में सवा बारह लाख भी मिलाने से २३७२५००० हुवे ॥ और भी——

एवं मुहूर्त्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोसौ चलस्तु परिवर्त्तते पुरीषु ॥ १२ ॥

इस प्रकार दो घड़ी में ३४ लाख ८ सौ योजनसे अधिक सूर्यरथ चलता है।

समीक्षा—इस हिसाब १५ घड़ी में २५५०६००० योजन होता है अब पाठक विचारें कि दण्डक १० में २३७२५००० ही होता था ॥

सूर्य रथ के धुरे—

द० ११ के टीका में दो धुरे बताये हैं, एक जो सुमेरु से मानसोत्तर तक फैला है, वह १५५५०००० योजन का है, दूसरा इससे चौथाई है (यह लेख दूरी के हिसाब लगा कर लिखा है जो कि अ० २० द० ३५ में बता आये हैं)

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभाग विशालस्तावान्० ॥ द० १५ ॥

सूर्यरथ ३६ लाख योजन चौड़ा ९ लाख योजन ऊंचा है ॥

समीक्षा—अ० २० श्लो० ४३ में २५ कोड़ ऊंचाई लिखी है क्या सुमेरु पर धरे धरे में और ९ लाख ऊंची चोटी से भी अधर हो सूर्य चलता है जो २५ कोड़ लिख चुके हैं । द० १९—

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १९ ॥

अर्थात् एक लाख साढ़े नौ करोड़ योजन पृथ्वीचक्र के घूमने के लिये एक क्षण में २००० योजन और २ कोश चलता है । भाषाटीका ने ९०१५०००० योजन अर्थ इस दण्डक का जाने कैसा किया है ॥

चन्द्रलोक वर्णन अ० २२

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्ष- योजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य स० ॥ ८ ॥

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य से ऊपर लाख योजन ऊंचा है ॥

समीक्षा--ग्रहलाघव तथा सिद्धान्तशिरोमणि और योरोपियन खगोल विद्याविद् विद्वानों के सिद्धान्तानुसार भी चन्द्रलोक पृथ्वी के समीप और सूर्य से बहुत नीचे है परन्तु भागवतकर्त्ता को क्या ख़बर, ऐसी भूल क्यों हुई। " अर्कादधश्चन्द्रकक्षा" वासना भाष्ये ॥

२४ वें अध्याय में शिशुमार चक्र का वर्णन है जिस में सब ग्रहों का निवास, पूंछ, कोख, छाती, मस्तकादि लिखा है ॥

ग्रहण विचार।

सूर्य से नीचे १० हज़ार योजन राहु है, ऐसा किसी का मत है। यथा--

अधस्तात् सवितुर्योजनायुतेस्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके ॥१॥

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमा- चक्षते, द्वादशसहस्रं सोमस्य, त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वाणि तद्व्यवधानकृद् वैरानुबन्धः सूर्यचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥

टी०-राहु के अधोभाग में रह कर सूर्य तपता है, सूर्य का विस्तार १० हज़ार योजन, चन्द्रमा का १२ हज़ार योजन, राहु का १३ हज़ार योजन का विस्तार है, वैर याद कर ग्रहण में राहु सूर्य चन्द्र की ओर भागता है ॥

समीक्षा-हम इस प्रकरण में इतना ही लिखेंगे कि ज्योतिः शास्त्र से भागवत का कितना भेद है। ग्रहलाघव में स्पष्ट है कि--

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः

अर्थात् सूर्य को चन्द्रमा ढकता है और चन्द्रमा को पृथ्वी की छाया ढांपती है, तब ग्रहण होता है। पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा है। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है। देखो भास्कर प्र० उत्तरार्ध पृ० ८० ८१। ८३॥

अध्याय २५--

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते ॥ १ ॥

पाताल के मूल में ३० हज़ार योजन विस्तार से शेषजी संकर्षण नामी रहते हैं ॥

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्त्तेः सहस्रशिरस
एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थइवलक्ष्यते ॥२॥

अनन्त नामक जिस शेष के हज़ार शिरों में एक शिर के ऊपर यह भूमि मण्डल सरसों के दाने के समान भास पड़ता है ॥ २ ॥

समीक्षा-जिस का ३० सहस्र योजन विस्तार बता चुके हैं उसका नाम अनन्त कहना उचित नहीं है, और उस के हज़ार शिर में एक शिर ३० योजन में को हुआ, फिर पृथ्वी को सरसों के सा दाना बताना कैसी विद्वत्ता है। सरसों का दाना अर्थ भी दाना पं० ज्वालाप्रसाद का बनत भाषाटीका में लिखा है। ३० योजन के शिर पर ५० क्रोड़ योजन की भूमि को सरसों के दाने समान बताने मात्र से ही बुद्धि की बानगी मिलती है। फिर यह शेष काहे पर बैठे या खड़े हैं। वह भूमि कहां है?



अथ षष्ठस्कन्ध समीक्षा

अ० १ में श्लो० २१ से अजामिल का उपाख्यान है ॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ।
नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥ २१ ॥
बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः । इत्यादि॥

अर्थात् कान्यकुब्ज देश में कोई अजामिल नामक दासीपति कुकर्मी था, जो जेल में जूवे में छलछिद्र में चोरी में गुज़र करता था, १० बेटे थे, छोटे का नाम "नारायण" था। सदा उसी में प्यार रखता था, मरते समय यम के दूतों को देख "(पुत्र) नारायण!" कह चिल्लाया तब विष्णु के दूत जल्दी आगये, यम के दूतों को धमकाने लगे कि तुम कौन हो, क्यों खड़े हो, क्यों आये हो। यमदूतों ने कहा-यह पापी महापापी है, वैदिक-धर्म का विरोधी है। विष्णु के दूतों ने कहा-(अ० २ में) अहो! न्यायासन पर ही अन्याय हो तो प्रजा कहां जावे? यमराज ऐसा दण्ड देते हैं, इसने नारायण का नाम लिया है, हम ले जावेंगे और लेगये ॥

समीक्षा-पाठक स्वयं विचारें, कैसा न्याय है। विष्णु की क़ानून का आगे भी को १ श्लोक देते हैं—

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥

अर्थात् चोर, शराबी, मित्रद्रोही, गुरुस्त्रीगामी, स्त्री राजा पिता और गौ को मारनेहारा और भी जो पापी हैं विष्णु के नाम लेनेमात्र से शुद्ध हो जाते हैं ॥१०॥ क्या अच्छा प्रायश्चित्त है । अध्याय ३ में यमके दूतोंने यमसे कहा कि कितने न्यायकर्त्ता संसार में हैं ? इस में बड़ा गड़ बड़ हो जाता है । हम तो एक आप ही को न्यायकारी जानते थे । तब यमने कहा—नहीं मुझ से बड़े और विष्णु हैं ॥

अ० ५ में नारदजी ने दक्ष के पुत्रों को ज्ञानोपदेश दिया, दक्षने शाप देदिया । भली गुरुदक्षिणा मिली ॥

अ० १८ में इन्द्र मौसी दिति के गर्भ में घुसगया ७ टुकड़े करे, फिर प्रत्येक के सात २ कर ४९ टुकड़े करदिये, गर्भ रोया, इन्द्र ने कहा 'मत रोओ' इस प्रकार ४९ मरुत हुवे ॥

—※※※—

अथ सप्तमस्कन्ध समीक्षा—

अ० १ श्लो० २५-३० तक लिखा है कि काम स्नेह, वैर भावादि किसी प्रकार से भी कृष्ण के याद रखने से मुक्ति हो जाती है ॥

समीक्षा—हमारीसम्मतिमेंतोईश्वरकी स्तुतिप्रार्थनोपासनादिसात्त्विक शुभ कर्मों से ही सुख होता है । यदि कृष्णादिको कंसादि दैत्य ईश्वर मानते जानते, तो लड़ते ही क्यों । कंसादिकों ने कभी भी ईश्वर मान कर वैर नहीं किया । बिना ईश्वरीयज्ञान के मुक्ति नहीं होती । वेद कहते हैं—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

प्रथम अध्याय में विष्णु के द्वारपालोंको शाप हुवा कि राक्षस होजाओ, फिर प्रसन्न होकर कहदिया कि यदि वैर करोगेतो ३ जन्मोंमेंमुक्तिपाजाओगे श्लो० ३७—जब विष्णुके मारनेमात्र से पवित्र हो मुक्तिपा जाते थे तो हिरण्य

हिरण्यकशिपु तो सृष्टि के आरम्भ सत्ययुग में ही हुवे होंगे, मरकर मुक्ति पाये या कहीं नरक स्वर्ग में रहे या तभी रावण कुम्भकर्ण बनगये ? रावण कुम्भकर्ण त्रेता में मारे गये और वहां भी उन का मुक्ति पाना वर्णित है फिर द्वापरान्त में शिशुपाल दन्तवक्त्र कैसे आ बने ? क्या मुक्ति से भी आपके मत में प्रत्येक युग में भी लौट आते हैं ? यह २८ वां कलियुग है, इस से पूर्व ५००० वर्ष हो तो शिशुपालादि का मरे हुवे हैं, फिर पौने दो अर्ब वर्ष तक ६ मन्वन्तर में क्या इन पार्षदों के ३ जन्म ही हुवे ! या प्रत्येक युग में मर २ के भी आते हैं ! पौराणिक विश्वास है कि प्रत्येक त्रेता में राम, द्वापर में कृष्ण होते हैं और रावण कंसादि को मारते हैं । अ० १० श्लो० १७ से २१ तक कहा है कि हे प्रह्लाद ! २१ पीढ़ी तेरी पवित्र हो गई, श्लोक २९ में ब्रह्मा से नृसिंह ने कहा कि ऐसा वरदान न दिया करो जैसा हिरण्यकशिपु को दे दिया । इस से क्या विष्णु ब्रह्मा रुद्र एक सिद्ध हो सकेंगे ?

अथाष्टमस्कन्ध समीक्षा

अ० ६ में एक स्त्री का अवतार लिखा है, उसी ने देव दैत्यों को समुद्र मथन का उपदेश दिया है । क्या यह २५ वां अवतार है? और(न जाने यहां स्त्रीरूप की क्या आवश्यकता थी) " मन्दर " पर्वत की रै वासुकि सर्प की नेती बनाकर देवासुरों ने समुद्र मथा, मन्दर को उठा लाये, दैत्य देव दबने लगे, मरते देख भगवान् आये, उन को जिवाया, हाथ पांव जोड़े, स्वयं पर्वत को गरुड़ पर धर लाये। इत्यादि असंगत असम्भव कथा भरी हैं। अ० ७–पहाड़ नीचे को सरकने लगा, तब कछवा बन नीचे बैठ गये ॥ ८॥ लाख योजन का पहाड़ पीठ पर धर लिया । यथा–

दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनं प्रस्तारिणा द्वीपइवापरो महान् ९

पढ़त खुशामदी ज्ञात हुवा है ॥

अ ७ में समुद्र मथन से रत्नरूप घोड़ा, हाथी, अप्सरा, विष, मदिरा, धन्वन्तरि वैद्य, सब निकले लिखे हैं । श्लो० ४१ में मोहनी स्त्रीरूप भगवान् का अवतार लिखा है ॥

स्तनभारकृशोदरीम् ४३

इत्यादि रूप का वर्णन है । दैत्यदल कामवश मोहागया, अमृत का बांट छल से देवतों को दे दिया ॥

समीक्षा—यह धर्मरक्षार्थ कैसा अवतार। किस धर्म की रक्षा की ? श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥

जब धर्म की ग्लानि, अधर्म की वृद्धि होती है तब अवतार धर्मरक्षार्थ होता है। मोहनी अवतार छलार्थ हुवा ॥ अध्याय १२-

मोहनी रूप पर शिव जी मोहित होगये । यथा—शिव ने सुना कि मोहनी रूप ने दैत्यों को मोहित कर देवों का अमृत दिलाया था, बैल पर चढ़कर विष्णु के पास गये, स्तुति की कि महाराज वह रूप मुझे भी दिखादो भगवान् छिप गये और बगीचे में एक उत्तम स्त्री टहलती फिरती देखी-

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ॥१८॥

देख कर निर्लज्ज होगये, विह्वल हो उस के पास पहुंचे ॥ २५ ॥

तस्यानुधावतोरेतश्चस्कन्दाऽमोघरेतसः ॥ ३२ ॥
यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥

शिवजी के भागते समय वीर्यस्खलित हो जहां २ भूमि में गिरा, वहां २ नदी पहाड़ वन उपवन सब सोने चान्दी के क्षेत्र होगये ॥

समीक्षा—इस कथा से शिवजी को अज्ञानी सिद्ध किया है, इस लिये मान्य नहीं हो सकती । न सोने चांदी के कहीं क्षेत्र ही हैं। वलायत में सोने चांदी की बहुत खानि हैं, क्या वलायत में ही शिवजी भागे थे ?

कमासालङ्का (वामन)

अ०१७ में कश्यपजी ने दिति को पयोव्रत बताया है कि फाल्गुन शुक्ला १ से १२ तक व्रत करे। वही व्रत दिति ने किया, जिस से वामन अवतार हुवा है। यह अ० १८ में वर्णित है ॥

समीक्षा—ध्यान देने योग्य बात है कि फा० शु० १२ को व्रत समाप्त हुवा तो फिर भाद्र शु० १२ को वामन का जन्म हुवा है, पूरा १ दिन कम ६

मास में ही वामन का जन्म हुआ होगा । वामन जी ने ३ पग में तीनों लोक नाप लिये, इत्यादि प्रसिद्ध बुद्धिविरुद्ध कथा का यहां उल्लेख कर ग्रन्थ नहीं बढ़ावेंगे ॥



अथ नवमस्कन्ध समीक्षा

"जगत् में यह ईश्वरीय नियम प्रचलित है कि स्त्री पुरुष नहीं बन सक्ती और पुरुष स्त्री नहीं बन सकता है परन्तु पुराण वालों ने इस ईश्वरीय नियम को भी उलट दिया है, श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध अध्याय १ में लिखा है कि सूर्यवंश के आदि पुरुष महाराज वैवस्वत मनु के जो इक्ष्वाकु आदि १० पुत्र प्रसिद्ध हैं (वैवस्वत मनु के यह दश पुत्र थे—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि) उन की उत्पत्ति से पूर्व वैवस्वत मनु ने महर्षि वशिष्ठ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया परन्तु उस यज्ञ के प्रताप से मनु की स्त्री के गर्भ से इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई. कन्या को देख के मनु को बड़ा असन्ताप उत्पन्न हुआ और उन्हों ने वशिष्ठ से कहा—

भगवन् किमिदं जातं कर्म्म वो ब्रह्मवादिनाम् ।
विपर्य्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥१७॥
यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्विषाः ।
कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥
तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान् प्रपितामहः ।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे नृपनन्दनम् ॥१९॥
एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ।
तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥
एवं व्यवसितो राजन् भगवान्स महायशाः ।
अस्तौषीदादिपुरुषम् इलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥२१॥
तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ।
ददाविलाभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥

इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि वैवस्वत मनु के जब इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई तब मनु ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि यह उलटा कार्य क्यों हुआ ? अर्थात् मैंने जो पुत्र की प्राप्ति के वास्ते यज्ञ किया था उस से पुत्री उत्पन्न क्यों हुई ? आप सब लोग वेद (मन्त्र) वैदिक कर्म और ब्रह्म के जानने वाले हैं, आप के यहां ऐसा उलटा फल होना उचित नहीं है। वशिष्ठ महाराज ने उत्तर दिया कि होता के उलटे संकल्प से यह उलटा फल हुआ है परन्तु मैं अपने तेज से तुम को सुपुत्र बनाऊंगा। ऐसा कहके वशिष्ठ ने विष्णु की स्तुति की, तब से प्रसन्न होके जो विष्णु ने वशिष्ठ को वर दिया उस ही वर के प्रताप से मनु की पुत्री इला पुरुष होगई और उसका नाम सुद्युम्न रक्खागया॥

इन महाराज सुद्युम्न की वही गति हुई जैसी एक चुहे की कथा हितोपदेश में लिखी है। यह बनावटी कथा है कि किसी नगर के समीप एक ऋषि रहा करते थे, उन के आश्रम पर एक चुही का बच्चा फिरा करता था, एक दिन चुही के बच्चे को खाने के निमित्त एक बिल्ली झपटी, ऋषि ने दया करके चुही के बच्चे से कहा कि "त्वमपि मार्जारोभव" इतना कहते ही चुही का बच्चा बिलाव बन गया, किसी दिन उस बिलाव पर कुत्ते ने हमला किया, ऋषि ने उसे बिलाव से कुत्ता बना दिया, इस ही प्रकार से चुही के बच्चे को बढ़ाते बढ़ाते सिंह रूप में परिस्थित कर दिया, चुही का बच्चा जब सिंह बनकर निर्भय विचरने लगा तब वन के अन्य सिंह उस का यह कहके निरादर करने लगे कि " रे! तू तो वही चुही का बच्चा है जिसे ऋषि ने बिलाव से बनाया था परन्तु हम लोग असली सिंहवंश के सिंह हैं, तू हमारी बराबरी क्या करेगा" इस अपमान को कृत्रिम सिंह न सहसका और समझा कि जब तक यह ऋषि जियेगा तब तक मेरा ऐसे ही अनादर होता रहेगा, इस से प्रथम ऋषि को मार डालना चाहिये, यह विचार कर ज्योंहीं वह ऋषि की ओर चला त्योंहीं ऋषि ने उस के बुरे अभिप्राय को समझ के कह दिया "पुनर्मूषिकोभव" बस इतना कहते ही वह फिर चुहा होगया। ऐसे ही सुद्युम्न फिर भी स्त्री होगया॥

स एकदा महाराज ! विचरन् मृगयां वने।
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम्॥२१

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान्।
दंशितोनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥
स कुमारो वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह।
यत्रास्ते भगवान् सर्वो रममाणस्सहोमया ॥२५॥
तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा।
अपश्यत् स्त्रियमात्मानम् अश्वं च वड़वां नृप ॥२६॥
तथा तदनुगास्सर्वे आत्मालङ्गविपर्य्ययम्।
दृष्ट्वा विमनसोभूवन् वीक्ष्यमाणाः परस्परम् ॥२७॥

एक समय सुद्युम्न अपने मन्त्री वर्ग को साथ लेके और धनुर्बाण लेके उत्तर दिशा में शिकार खेलने को गया। राजकुमार सुद्युम्न एक मृग के पीछे जाते जाते सुमेरु पर्वत की तलहटी के वन में पहुंच गया, इस ही वन में महादेव जी पार्वती के सहित विहार किया करते थे। उस वन में घुसते ही राजकुमार सुद्युम्न स्त्री और उस का घोड़ा घोड़ी होगया उस के सम्पूर्ण साथी भी स्त्री होगये और आश्चर्य से युक्त होके एक दूसरे को देखने लगे। इस पर भी आश्चर्य यह है कि वह राजकुमार एक महीना स्त्री रहता था और एक महीना पुरुष रहके राज्य के कार्य करता था। इस राजा के स्त्री शरीर से सन्तान हुई और पुरुष शरीर से भी वंश चला, इस ही कथा में लिखा है कि महादेव के शाप से वह वन ऐसा होगया था कि जो पुरुष उस वन में जाय वही स्त्री होजाय, श्रीमद्भागवत नवमस्कन्ध के प्रथम अध्याय ही में लिखा है॥

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तस्समुपागमन् ॥२९॥
तान्विलोक्याम्बिका देवी विवस्त्रा व्रीड़िता भृशम्।
भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्य्यधात् ॥३०॥
ऋषयोपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः।
निवृत्ताः प्रययस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद्भवेदिति ॥३२॥

इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि एक समय ऋषि लोग महादेव के दर्शनार्थ वनवन में गये, उस समय महादेव पार्वती के साथ विहार कर रहे थे, ऋषियों को आता देख कर पार्वती अत्यन्त लज्जित हुई क्योंकि वह वस्त्र हीन थीं, पार्वती ने महादेव की गोद से उठ कर वस्त्र पहिरा, ऋषि लोग भी महादेव पार्वती के विहारसमय को जान कर वहां से लौट आये और नरनारायण के आश्रम को चले गये तब महादेव ने पार्वती को प्रसन्न करनेके निमित्त कहा कि आज से जो कोई इस स्थानमें आवेगा वह स्त्री होजायगा इस भागवत के बनाने वाले लालबुझक्कड़ से कोई पूछे कि उस स्थानमेंमहादेव जी पुरुष क्योंकर रहे? यदि महादेव जी ऐसा कहते कि "मां विना यः विशेदेतत्" तब कुछ ठीक भी होता है। इस के अतिरिक्त जिन महादेवजी को पुराण वाले सर्वज्ञ मानते हैं उनको यह भी मालूम न हुआ कि ऋषि लोग हमारे दर्शनको आते हैं। हम उनके आने से पूर्व ही सावधान होजांय॥

राजा सुद्युम्न की असम्भव कथा की समाप्ति इतने ही में नहीं हुई वरन चन्द्रमा के पुत्र बुध से उस का गान्धर्व विवाह कराया गया और उस के उदर से पुरूरवा की उत्पत्ति भी हुई और एक पुत्र उत्पन्न हो जाने के बाद स्त्रीरूपी सुद्युम्नने अपने हर्त्ता कर्त्ता और विधातारूपी गुरु वशिष्ठ को फिर याद किया याद करते ही वशिष्ठ जी आ मौजूद हुए और सुद्युम्न की दशा को देखकर अत्यन्त दुःखी हुए फिर वशिष्ठ ने महादेव को प्रसन्न करने के निमित्त घोर तप किया, उन के तप से प्रसन्न होके महादेव ने दर्शन देके यह वर दिया कि-

मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोवतु मेदिनीम् ॥३३॥

सुद्युम्न एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहा करेगा और इच्छापूर्वक पृथ्वी की रक्षा करेगा ॥

आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।
पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः ॥३४॥

इस प्रकार से आचार्य की कृपा से सुद्युम्न को पुरुषत्व प्राप्त हुवा और उस ने पृथ्वी का पालन किया परन्तु प्रजा उस से प्रसन्न न रही, सुद्युम्न के पुरुष रूप से तीन और स्त्री रूपसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः ।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मतत्पराः ॥ ३४ ॥

उस सुद्युम्न के उत्कल गय और विमल ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । ये तीनों दक्षिण देश के धर्मपरायण राजा हुए ॥

अब पाठक स्वयं विचार सक्ते हैं कि इस क़िस्से से अलिफ़लैला के क़िस्से अच्छे हैं वा नहीं, चिकित्सा शास्त्र के प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि स्त्री के शरीर की धातु तथा शिरा और अस्थि आदि पुरुष के शरीर की धातु और शिरा आदि से अत्यन्त भिन्न हैं, प्रत्येक महीने में उन का बदल जाना सर्वथा असम्भव है ॥

श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध अ० ३ में यह अद्भुत कथा लिखी है ॥

उत्तानबर्हिरानर्त्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्त्ताद्रेवतोभवत् ॥ २७ ॥
सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोभुङ्क्तविषयानानर्त्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥
तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ।
ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥२९॥
पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ।
आवर्त्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥३०॥
तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥
अहो राजन्निरूढास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥

कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।
तद् गच्छ देवदेवांशो नरदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥
कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।
भुवो भारावतारायभगवान् भूतभावनः ॥ ३४ ॥
अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्त्तनः ।
इत्यादिष्टोऽभिवाद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥
त्यक्तं पुण्यजनत्रासात् भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ।
सुतां दत्वाऽनवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।
बदर्य्याख्यं तपो राज तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥

इन सब श्लोकों का अभिप्राय यह है कि राजा शर्याति के उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । आनर्त्त का पुत्र रेवत हुआ जिसने समुद्र के बीच में कुशस्थली नगरी बसाई और आनर्त्त आदि देशोंका राज्य भोगा । राजा आनर्त्त के १०० पुत्र हुए, इन में ककुद्मी सब से बड़ा था, राजा ककुद्मी अपनी पुत्री रेवती को साथ लेके आदिदेव ब्रह्मा के पास गया, ब्रह्मा की सभा में उस समय गन्धर्व गान कर रहे थे इस कारणराजा ककुद्मी क्षणमात्र (मौक़ा पाने के वास्ते) चुपरहे, जब गन्धर्व गाचुके तब राजा ककुद्मी ने ब्रह्मा से अपना अभिप्राय कहा (पूछा कि इस कन्या के योग्य वर बतलाइये) ब्रह्मा ने हंस कर कहा कि राजन्! तुमने जिन राज-पुत्रों के साथ अपने हृदय में इस कन्या का विवाह करना विचारा था उनके पुत्र पौत्र और नातियों का तो क्या उन के गोत्रों का भी अब चिह्न नहीं रहा है, जितनी देर तुम यहां खड़े प्रतीक्षा करते रहे उतने काल में चारों युग २७ वार व्यतीत हो चुके, अब संसार में पृथ्वी का भार उतारने को स्वयं भगवान् ने अवतार लिया है । तुम उन्हीं नररत्न बलराम से इस कन्यारत्न का विवाह करदो, ब्रह्मा की इस आज्ञा को सुन के राजा ककुद्मी अपने नगर में आये और अपने नगर को गन्धर्वों के भय से तथा स्वजनशून्य जान के त्याग दिया और बलराम के साथ रेवती का विवाह करके आप बदरि-काश्रम तप करने को चलागया ॥

श्रीमद्भागवत समीक्षा

(जनवरी से आगे)

पाठक ! विचारिये तो सही कि मुसलमानों के बहिश्त में जो हूरें रहती हैं उनको बुढ़ापे का दुःख नहीं होता, परन्तु वह बहिश्त से ज़मीन पर नहीं आती हैं और न बहिश्त में गये आदमी यहां फिर कर आते हैं किन्तु पुराण वालों के बहिश्त (ब्रह्मलोक) से राजा ककुद्मी अपनी कन्या के सहित लौट आये और रेवती को वृद्धावस्था न आई । और यहभी सही परन्तु उस विवाह में ज्योतिषियों ने गोत्रादि का मिलान क्योंकर किया था ? और बलराम से युगों बड़ी रेवती का विवाह कैसे काशीनाथ के शीघ्रबोध से शुद्ध हुआ ? क्या कोई पौराणिक पण्डित कह सकता है कि यह विवाह जन्म कुण्डली के मिलान से हुआ था ? क्या २७ चौकड़ी युग बीतजाने पर भी सब ग्रहों की चाल ज्यों की त्यों बनी रही थी ? यदि नहीं तो भारतधर्ममहामण्डल रेवती और बलराम के विवाह को धर्मविवाह कह सकता है ?

नरबलि

हा ! शोक !! पुराणों ने बलिदान में पशुओंपर ही संतोष नहीं किया मनुष्यबलि और वह भी पिता के हाथ से पुत्रों का बलिदान (कटवाना) बखाना है ॥

राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व की कथा पाठकों को नाटक नाविलों से ज्ञात हुई होगी, सत्यवीर राजा हरिश्चन्द्र का यश संसार में व्याप्त है, परन्तु भागवत के नवमस्कन्ध अ०७ में लिखा है कि वह मिथ्यावादी था, उस हरिश्चन्द्र के सन्तान नहीं थी, उस ने वरुणदेव से प्रार्थना की कि मेरे पुत्र हो तो तेरी भेंट करदूं । पुत्र रोहिताश्व हुवा, तब वरुण आया कि भेंटकर राजा ने कहा, अभी (पशु) मेरे पुत्र का नामकरण नहीं हुवा, नामकरण होनेपर भेंटदूंगा ॥१० ॥ फिर कहा दन्त निकलने पर, तीसरी बार वरुणआया कहा दूध के दांत नहीं टूटे हैं, चौथी बार आया, तब कहा सन्नाह पहिर योद्धा होजावे तब दूंगा । ऐसे ही टालता रहा, पुत्र ने जब सुना, घर से निकल गया । हरिश्चन्द्र ने अन्य पुरुष से पुरुषमेध किया । यथा—

ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥ २१ ॥

अथ दशमस्कन्धसमीक्षा

यह भी अनेक लोगों को विदित नहीं है कि पुराणवाले "ईशामसीह" के समान बिना पितृमातृसंयोग के बलराम की उत्पत्तिमानते हैं, हम नहीं जानते कि बलदेव की उत्पत्ति की कथा बायबिल को देख के घड़ीगई है वा बायबिल के बनानेवाले ने भागवत को देख के ईशामसीह के जन्म की असम्भव कहानी बनाई है, जो हो परन्तु इस में सन्देह नहीं है कि इस असम्भव कहानी का कुछभी सिर पैर नहीं है, इस बातको कौनसा मनुष्य स्वीकार कर सकता है कि एक स्त्री का गर्भ (गर्भस्थमांसपिण्ड) दूसरी स्त्रीके गर्भ में चलागया ॥ भागवत के दशमस्कन्ध अ० २ में लिखा है–

हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥
सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥
भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥
गच्छ देवि ! व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ॥ ७ ॥
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ।
देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ ८ ॥
तत्संनिकृष्य रोहिण्या जठरे संनिवेशय ।
गर्भं संकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणम्भुवि ॥
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥
सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥ १४ ॥
गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि उग्रसेनके पुत्र कंस ने जब देवकीके ६ पुत्र मारडाले तब विष्णुका शयनस्थान जिसको अनन्त (शेषनाग) कहते हैं वह सातवें गर्भमें आया, देवकी का वह सातवां गर्भ हर्ष और शोक का बढ़ानेवाला हुआ, तब जगद्व्यापक भगवान् (विष्णु) ने अपने दास यदुवंशियोंको कंसके डरसे व्याकुल देखके योगमाया (देवी) को आज्ञा दी कि हे देवी! तुम ग्वाले और गौओंसे भरे हुए व्रजमें जाओ, गोकुलमें वसुदेव को स्त्री रोहिणी रहती है, उसके उदर में मेरे निवासस्थान शेष को देवकी के उदर से निकाल के पहुंचादो (वा स्थापन करदो) * * इस अवस्था में जो वह खींच कर दूसरे गर्भ पहुंचाये गये इस से उन का नाम संकर्षण, लोक में रमण करने से राम और अत्यन्त बलवान् होने से बल जगत् में प्रसिद्ध होगा। योगमाया देवी भगवान् से ऐसी आज्ञा पाकर और उसे स्वीकार करके पृथ्वी में गई और वैसे ही कार्य किया। योगमाया ने जब देवकी के उदर से गर्भ को निकाल के रोहिणी के उदर में पहुंचा दिया तब शहर के रहने वालों ने ओः!! गर्भपात होगया, ऐसा कहके शोक किया॥

अब इस में प्रश्न यह है कि प्रत्येक स्त्री का गर्भाशय नसों से ऐसा जकड़ा रहता है कि उस के निकल आने से कोई भी नहीं बचसक्ती है, यदि गर्भाशय को छोड़कर योगमाया ने देवकी के गर्भ को रोहिणी के गर्भ में पहुंचाया तो उसका पुनः संस्थापन क्योंकर हुआ? यदि गर्भाशय के सहित पहुंचाया तो देवकी क्योंकर जीवित रही, यह पौराणिकों की लीला ईसाइयों की लीला से किसी अंश में कम नहीं है॥

"अब एक और अद्भुत कथा सुनिये—बलराम को स्त्री रेवती न मालूम कितने करोड़ वर्षों की थी, लिखते हंसी आती है कि जब बलदेव के पड़दादा का भी जन्म नहीं था, तब रेवती ब्रह्मा की सभा में बैठीहुई गन्धर्वों के गीत सुन रही थी॥" (यह लेख नवम स्कन्ध समीक्षा का है)

१—सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी ने पूतनावध का खण्डन कियाही है कि उस का शरीर कोसों के वृक्षों का नाश कर गिरा॥

२—मट्टी खाते समय श्रीकृष्ण ने माता को तीन लोक मुख में दिखाइये। अ० ८ में लिखा है॥

३—अ० १९ अग्नि का प्राशन (खाना) असंभव है॥

४—अ० २२ में गोपी वस्त्रहरण अन्याय है॥

५- अ० २४ में इन्द्रयाग को श्री कृष्ण ने रोका । यज्ञ न करने देना नास्तिकता है ॥

६—अ० २९—३३ तक का रासलीला में कृष्ण का स्त्रैण बताना दोष है ॥

केवल एक श्लोक लिख कर हो भक्तिभाव, कामीपन का नमूना दिखा देंगे। कौन ऐसा पुरुष भक्त कहा सकता है जो अपने उपास्यदेव पर ऐसा दोष धरे। इससे हम को शङ्का है कि ऐसी २ कथा श्रीकृष्ण के शत्रुओं की रचना ही हो सकती हैं—

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः । चित्रंनतत्खलुरमास्पदविम्बबिम्बेकामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ श्लोक ४० अ० ५५ ॥

अर्थात पिता कृष्ण के समान प्रद्युम्न जी का रूप जान उस की माता रुक्मिणी आदि भी एकान्त में सेवन को त्यार हुईं, तब अन्य नारियों की तो कथा ही क्या है ? यह आश्चर्य नहीं कामदेव ऐसाही बली है ॥

इसी को हरिवंश भविष्यपर्व अ० १७१ में भी लिखा है:—

प्रद्युम्न उवाच—

मातृभावं परित्यज्य किमेवं वर्त्तसेऽन्यथा ।
अहो दुष्टस्वभावाऽसि स्त्रीत्वे चापल्यमानसा ॥१८॥

प्रद्युम्न रुक्मिणी को अपने ऊपर मोहित जान कहते हैं कि मातृभाव त्याग कर ऐसे वर्त्ताव क्यों करती हो ? अहो स्त्रियों का स्वभाव बड़ा दुष्ट होता है, इति ॥

श्रीकृष्ण की सन्तान

दशायुतसमाख्याता वासुदेवस्य वै सुताः ॥ २१ ॥

हरिवंश भ० पर्व अ० १०३ में—

दशायुत का अर्थ एक लक्ष होता है, क्योंकि अयुत दश हज़ार को कहते हैं दशगुणा करने से लक्ष होते हैं ॥

भागवत अ० ६१ में १६१०० रानियों के प्रत्येक से १० । १० पुत्र लिखे हैं यथा—

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाऽबलाः।
अजीजनन्न नवमात् पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥
यत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥

१६ सहस्र गोपीगण के प्रत्येक में १० सन्तान हों तौ एक लाख साठ हज़ार पुत्र हुवे। यहां हरिवंश से विरोध होता है, वहां एकलक्ष ही लिखा है॥

(द्यूत) जुआ

अ० ६१ में श्लोक २३ से ३७ तक बलदेव जी की द्यूत क्रिया का वर्ण है। यहां लिखा है "इतिदीव्यन्ति राजानः" इत्यादि॥

मद्यपान

अ० ६५ में बलदेव जी वृन्दावन आये हैं, वहां दो मास ठहरे।

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥

वन में मीठी मद्य की गन्ध लेते २ स्त्रियों सहित मद्य पिया॥

समीक्षा—श्रीकृष्णचन्द्र को १६ सहस्र रानियों से कामक्रीडा करना बलदाऊ जी को मद्यप और ज्वारी बताना अनर्थ है। भौमासुर की जीती १६००० राजकन्याओं से विवाह करना अ० ५९ में स्पष्ट लिखा है॥

अथ एकादशस्कन्धसमीक्षा

श्री कृष्ण को कुलघ्नता दोष—

संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ अ० १

अर्थात् स्वकुल संहार करने को कृष्ण ने इच्छा की॥

अ० २ प्रियव्रत के प्रपौत्र ऋषभदेव को वेदपारग ईश्वरावतार लिखा है स्कन्ध ५ अ० ३ में इन्हें जैनमतप्रवर्त्तक लिखा है। देखो भाषा टीका बम्बई का छापा श्री वेंकटेश्वर प्रेस॥

अ० ५ कलियुग की महिमा लिख कर यहां तक लिखा है। यथा—

कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८

सत्ययुग के लोग इस कलियुग में जन्म चाहते हैं, क्योंकि कलियुग नारायणपरायण होंगे। द्रविड देश में ताम्रपर्णी नदी के पास के लोग का... के तट के जलपान करते हैं, ये प्रायः भक्त होंगे, फिर बुराई क्यों? । अ० ६ श्लोक २५ में श्रीकृष्ण की आयु कुल १२५ वर्ष की बताई है । यदि द्वापर में होते तो १ की होती । अ० ३० यादव शरीरत्यागार्थ प्र। नियम पूजन करने को कहे " यदुकुला मधुद्विषः " कहे यादव शराब को बुरा जानते थे । यह श्लोक १० में है परन्तु १२ वें श्लोक में महापान का वर्णन है । यथा-

ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ।
दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

वन में जाय बुद्धि भ्रष्ट हुई, खूब शराब पीगई ॥ । परन्तु यह ठीक नहीं है कि जो संसार के उद्धार व धर्म के प्रचारार्थ जन्म लें, वह अपने का ही नाश कराने को अधर्म से न रोकें बल्कि प्रवृत्त करें । यथा-

कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

कृष्ण की माया से मूर्ख हो खूब मस्त बने, लड़ाई हुई ।

अथ द्वादशस्कन्धसमीक्षा

अ० १ में भविष्यत् कथा कहते हुवे श्लोक २८ में में कहा है:-

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश च पुष्कसाः ।
भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ २८ ॥

८ पीढी राजा-मुसलमान, १४ पुश्त पुष्कस, फिर १० कुल गुरुण्डों के ... ११ मौनों के राज्य करेंगे ॥

समीक्षा-यदि यवन शब्द का मुसलमान अर्थ करें तो उनको ८ बादशाह तो भारत में हुवे या नहीं इस पर विवाद नहीं परन्तु मुसलमानों के व १४ पुष्कसों को बादशाहत कौन सी हुई ?

[illegible] यहां सिक्खों का वर्णन नहीं। गुरुनानक का नाम [illegible] पुराणमें अवश्य आया है परन्तु भागवत में कहीं भी न होना सिद्ध करता है कि उस समय मुसलमान तो थे परन्तु सिक्ख नहीं हुये थे। अ० २ में—

त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

२० । ३० वर्ष की परमायु कलियुगमें मनुष्यों की होगी। यहां हम यह भी बतला सकते हैं कि मनुष्यों की आयु १०० वर्ष की वेदविहित है, चारों युगों में १०० वर्ष की आयु होना है, हां यह होसकता है कि योग साधन से कुछ [illegible] आयु बढ़ा सकें, अपमिथ्याचारादि से घटा सकें। श्री कृष्णचन्द्रकी आयु भी एकादशस्कन्ध अ० ६ में १२५ वर्ष की ही लिखी है ॥

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ! ।
शरच्छतं व्यतीताय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥
नाऽधुना तेऽखिलाधार ! देवकार्यावशेषितम् ।
कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥

कृष्ण से ब्रह्मा ने कहा कि आपको यदुकुल में १२५ वर्ष बीते, अब कोई देवकार्य बाकी नहीं रहा। यह वंश भी नष्टप्राय होगया ॥

अब सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में लख, दशहजार और १ हजार वर्षकी आयु बताना व्यर्थ है, रामचन्द्रजी की भी इतनी ही आयु हुई है। कहीं २ वर्ष शब्द का अर्थ दिन भी लिया जाता है क्योंकि वाल्मीकीय रामायण में जब रामचन्द्र के पास ब्राह्मण मरे पुत्र को लाया है तब "पञ्चवर्षसहस्रकम्" अर्थात ५००० वर्ष की आयु बताई है, टीका में लिखा है कि—"वर्षशब्दोऽत्रदिनपरः" अर्थात यहां दिन का वाचक वर्ष शब्द है "किंचिन्न्यूनचतुर्दशवर्ष इत्यर्थः" कुछ कम १४ वर्ष अर्थ किया है। इसी से सिद्ध है कि किसी भीयुग में १००वर्ष से अधिक आयु नहीं होती थी।

पुराणों के प्राचीन होने में स्वयं पौराणिकों को भी विश्वास नहीं है क्योंकि एक बंगाली पण्डित ने अपने पुस्तक में लिखा है की श्रीमद्भागवत बोपदेव की बनाई है। यथा—

श्रीमद्भागवतस्यानुक्रमणी स्मरणाङ्कुशी ।
विदुषा वोपदेवेन भिषक्केशवसूनुना ॥

हरिलीला नामक पुस्तक में भी लिखा है ॥

श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते ।
विदुषा वोपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रितुष्टये ॥

ज्ञानेश्वर मिश्र ने जो गीता की टीका बनाई है उन में उन्हों ने १२३. शकाब्द में हेमाद्रि का होना सिद्ध किया है और वोपदेव हेमाद्रि के ही समय में हुये थे इस से भागवत की अत्यन्त नवीनता सिद्ध होती है, भागवत की चूर्णिका टीका में इन श्लोकों को उद्धृत किया है जिस से भागवत की अर्वाचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है ॥

भविष्यपुराण प्रति सर्ग पर्व ३ अ० ३२ में वोपदेव कृत भागवत को लिखा है जो वेदप्रकाश फर्वरी सन् १८ पृ० ४१ में छपगी छाया है ॥

पुराणों की सम्पूर्ण असम्भव और असत्य कहानी लिखी जांय तो एक बड़ा भारी पुस्तक बन जाय इस के अतिरिक्त इन के परस्परविरोध दिखाने को भी एक स्वतन्त्र पुस्तक रचने की आवश्यकता है ॥

देवीभागवत अ० १ स्कन्ध १ में लिखा है:—

विविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च ।
वितण्डाछलयुक्तानि मिथ्याऽनर्थकराणि च ॥ ८ ॥

सब पुराण और विविध शास्त्र छल वितण्डा से भरे हैं। इसने शास्त्र पर भी धूल झोंक दी है क्योंकि स्वयं पुराण है ना ?

पाठकवृन्द ! जो कुछ मैंने इस पुस्तक में लिखा है वह अपने हृदय की श्रद्धारूप से लिखा है, किसी का चित्त दुखाने के लिये नहीं। ईश्वर द्वेष वैर भावको दूर करे, हमें शान्ति दे, यही हमारी प्रार्थना है। आप लोग इस के गुण ग्रहण कर वेदों पर श्रद्धा करेंगे, तभी मेरा श्रम सफल होगा।

शान्तिरस्तु
तुलसीराम स्वामी

लगे। अध्याय ८ में परीक्षित ने ब्रह्मा का कमल से उत्पन्न होना, ब्रह्म, माया आदि और अवतारकथा, युगों के धर्म, वेद, उपवेद, इतिहास पुराणों का धर्म पूछा है। अध्याय ९ में श्रीशुकदेव जी ने उत्तर दिया है। अ० ८ के ही अन्त में निम्न श्लोक हैं॥

सूतउवाच-

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते॥ २८॥
यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति। *
आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ २९॥

अर्थात् वेदसम्मित पुराण भागवत शुकदेव जी सुनाने लगे, और जो २ ने प्रश्न किये उन का समाधान करते रहे। और ४ श्लोक की भागवत प्रसिद्ध है, वह यहीं वर्णित है। यथाः-

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ ३१॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥३२॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ३३॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥ ३५॥

ब्रह्मा के प्रति भगवान् की उक्ति है॥

अ० १० में सृष्टि की उत्पत्ति, अनेक योनियों का प्रादुर्भाव मनुस्मृति के अण्ड से वर्णित है। नाभि, कमल और ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन है। उस से सिद्ध है कि यह पुराकालीन बात नहीं है कि नाभिकमल और, ब्रह्मा से पुत्रोत्पत्ति वा पृथिवीतल और सब योनियों की उत्पत्ति किन्तु वह स्पष्ट है कि:-

* श्लोक २९ में परीक्षित शब्द का हलन्त होना चिन्त्य है॥

प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ।
सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७॥

शौनक ने श्लोक ४८ में प्रश्न किया कि हे सूत जी ! विदुर मैत्रेय का संवाद कहिये, जो तीर्थयात्रा में हुवा था ॥

इस पर सूत जी ने कहा कि राजा परीक्षित ने भी शुकदेव जी से प्रश्न किया था। जो वृत्त शुकने परीक्षित को सुनाया, वह तुम भी सुनो। इस से बिल्कुल ही स्पष्ट है कि यह वह भागवत नहीं है कि जो शुकदेव द्वारा राजा ने सुनी थी। यह तो शौनक के, जो जीमें आता है, वह सूझते हैं और सूत जी उसका उत्तर देते समय अपनी याददाश्त सुनाते हैं, जो शुक परीक्षित संवाद में याद आजाता है उसे भी सुना देते हैं ॥

इति द्वितीयस्कन्धसमीक्षा

